राजस्थानी जैन साहित्य

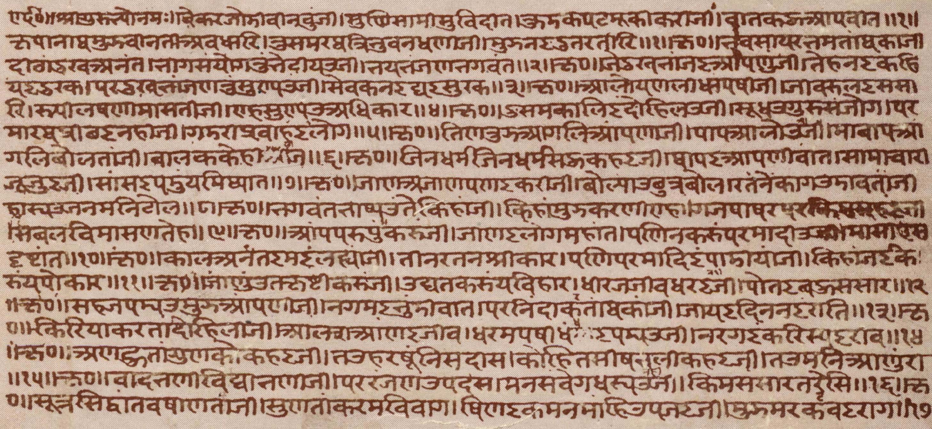

डॉ. मनमोहनस्वरूप माथुर

राजस्थानी जैन साहित्य

राजस्थानी जैन साहित्य

डॉ. मनमोहनस्वरूप माथुर
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजस्थानी-विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

◆ प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट, जोधपुर
फोन : (कार्यालय) 623933
(निवास) 432567

◆ प्रथम संस्करण : 1999

◆ © सुरक्षित

◆ मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र (150.00)

◆ लेजर टाइपसेटिंग :
ए. सी. सी. कम्प्यूटर
202, अमर चैम्बर्स, ओलम्पिक रोड
जालोरी गेट, जोधपुर

◆ मुद्रक :
एस.एन. प्रिण्टर्स,
M-72, नवीनशहादरा, दिल्ली-32

RAJASTHANI JAIN SAHITAYA
By : Dr. Manmohan Swaroop Mathur
Published by : **RAJASTHANI SAHITYA SANSTHAN**
First Edition : 1999 Rs. 150.00

पुरोवाक्

राजस्थान साहित्य और संस्कृति से सम्पन्न भारत का प्रमुख राज्य है। इस प्रदेश के शासकों ने समय-समय पर विविध धर्मों-सम्प्रदायों को संरक्षण एवं प्रश्रय देकर इनका सम्मान किया। इसी भावना के परिणाम स्वरूप यहाँ अन्य धर्मों की भाँति जैन धर्म को भी पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रमाणों के आधार पर राजस्थान में जैन धर्म का प्रचार दूसरी शताब्दी से ही आरंभ हो गया था। जैन धर्म के प्रचार-प्रसार ने यहाँ की साहित्य-सम्पदा की और श्रीवृद्धि की। जैनधर्म से सम्बन्धित विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं के यतियों, मुनियों, आचार्यों ने अपने सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य का सृजन विविध साहित्यिक विधाओं में लिखा, जो यहां के विभिन्न ग्रंथालयों में संग्रहीत-संरक्षित है। इस साहित्य की भाषा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी अथवा मरू-गुर्जरी है। इन विपुल जैन ग्रंथों को देखकर किसी भी शोधार्थी में उनके अन्वेषण की भावना स्वतः ही स्फूरित हो सकती है।

इसी भावना ने मुझे जैन साहित्य के अध्ययन-अन्वेषण की ओर प्रेरित किया। इसके प्रथम पुष्प के रूप में मैंने जैन कवि कुशललाभ और उनके साहित्य पर अपनी पी-एच.डी. की उपाधि हेतु शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। इस शोध कार्य के समय अनेक विषयों और आयामों ने मेरा स्पर्श किया और मुझे प्रेरित किया कि जब-तब मैं कुछ शोधपरक कार्य करुं तो उन विषयों को मैं आलोकित करुं। इस इच्छा की पूर्ति मैंने विभिन्न अवसरों पर आयोजित सेमीनारों में तत्सम्बन्धी शोध-पत्रों को प्रस्तुत करके की। इन शोध लेखों का संग्रह ही यह ग्रंथ "राजस्थानी जैन साहित्य" है।

जैसा कि मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि यहाँ जैन रचनाकारों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएं भी रही हैं, किंतु मैंने मात्र जैनियों की राजस्थानी रचनाओं का ही स्पर्श किया है। कारण, राजस्थानी में ही जैनियों ने अपने ऋषि-मुनियों, तीर्थंकरों, गुरुओं से सम्बन्धित व्यापक साहित्य का निर्माण किया। यदि वही साहित्य

प्रकाश में आ जाय तो वह हमारी संस्कृति का परिचय दे सकने में समर्थ होगा। जैन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के विषय धर्म, दर्शन, तीर्थंकरों आदि के चरित्रों को बनाया। सैद्धान्तिक और साहित्यिक सभी विषयों को इन रचनाकारों ने बड़े कौशल के साथ निरूपित किया है। इनकी रचना शैली साहित्य-जगत् में जैन शैली नाम से जानी जाती है। प्रस्तुत ग्रंथ के दसवें शोध लेख में इस शैली का यथा-प्रसंग उल्लेख किया गया है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में राजस्थानी जैन साहित्य से संबंधित ग्यारह शोध-निबन्ध संकलित हैं। इनमें प्रथम आलेख राजस्थानी जैन साहित्य के स्वरूप को निरूपित करता है। राजस्थानी जैन रचनाकारों ने इन सभी विधाओं पर श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माण किया। जैन धर्म श्रमण-संस्कृति का प्रमुख अंग है। इसी संस्कृति के समाज को चित्रित करता है इस संग्रह का दूसरा शोध-निबन्ध। राजस्थानी जैन साहित्य मूलतः धार्मिक साहित्य है, जिसका निर्माण जैन यतियों-मुनियों ने किया। इस साहित्य का मूल लक्ष्य जैन समाज में श्रमण-संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना था, अतः लोक प्रचलित ढालों और रागों के माध्यम से उपासरों में यह साहित्य गाया और सुना जाता था। इन्हीं रागों का विवेचन तीसरे शोध आलेख में प्रस्तुत है।

जैन भक्ति का मूल लक्ष्य शम की प्राप्ति है। इसकी उपलब्धि के लिए जैन रचनाकार सर्वप्रथम अपने नायक-तीर्थंकर, ऋषि, चरितनायकों का शृंगार से सराबोर चित्रण करता है। तदुपरान्त उसमें वैराग्य उत्पन्न कर उसे संन्यास में अवगाहित करता है। इन्हीं प्रवृत्तियों से सम्बन्धित उनकी प्रेमख्यान रचनाएं है। ग्रंथ में सम्मिलित चौथा, छठा और दसवां शोध आलेख इसी ओर संकेत करते हैं।

यद्यपि जैन धर्म अहिंसावादी है किन्तु शिव और शक्ति की अवधारणा को इस धर्म में पूर्ण स्वीकृति है। 24 तीर्थंकरों की अधिष्ठात्री देवियों के रूप में यहां 24 देवियों का उल्लेख हुआ है। इन देवियों से सम्बन्धित अनेक राजस्थानी रचनाएं मिलती हैं। इन्हीं सबकी विस्तार के साथ ग्रंथ में संकलित पांचवें शोध आलेख में चर्चा की गई है। इस सारस्वत रचना के आठवें और नवें आलेख का अपना महत्व है। आठवें आलेख में राजस्थानी काव्यशास्त्र से सम्बन्धित चर्चा की गई है और नवें अध्याय में राजस्थान के महत्वपूर्ण मध्यकालीन जनपद अहिच्छत्रपुर और वर्तमान नागौर मण्डल के जैन रचनाकारों एवं रचनाओं का ऐतिहासिक इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित शोध निबन्धों की सामग्री मैंने राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा और पंजाब के राजकीय एवं निजी संग्रहालयों से जब-तब प्राप्त की है। इन्हें शीघ्र एवं सहज रूप से सुलभ करवाने के लिये सम्बन्धित संग्रहालयों का मैं हृदय से आभारी हूँ। सामग्री के विवेचन और विश्लेषण में मुझे पूज्य गुरुवर (प्रो.) नरोत्तमदास स्वामी, जैन साहित्य मर्मज्ञ स्व. श्री अगरचन्द नाहटा के पूत आशीर्वाद के साथ ही सर्वाधिक सहयोग डॉ. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर) का मिला। वे मेरे गुरू और अग्रज तुल्य हैं, अतः उनके प्रति आभार ज्ञापित करना धृष्टता होगी। भाई श्री ब्रजेशकुमार सिंह का मैं आभार किन शब्दों में अभिव्यक्त करुं, जिन्होंने इस सामग्री को मेरी सुविधानुसार शीघ्र टंकित कर यथासमय मुझे दे दी।

राजस्थानी जैन साहित्य से सम्बन्धित इतनी सारी सामग्री एक साथ पुस्तकाकार में प्रकाशित हो सुधी विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो, यही इस पुस्तक के प्रकाशन का लक्ष्य है।

(डॉ.) मनमोहन स्वरूप माथुर

विषय-सूची

पुरोवाक् .... i-iii

1. राजस्थानी जैन साहित्य की रूप-परम्परा 1-16

2. मध्यकालीन राजस्थानी जैन-रचनाओं में सामाजिक इतिहास-संदर्भ (वि. सं. 1600 - वि. सं. 1900) 17-26

3. राजस्थानी जैन-काव्य में संगीत-तत्त्व 27-30

4. राजस्थानी की जैन-प्रेमाख्यानक रचनाएँ.................. 31-51

5. जैन-देवियां एवं तत्सम्बन्धी जैन-रचनाएँ 52-63

6. स्थूलिभद्र-कथा और तत्सम्बन्धी राजस्थानी रचनाएँ 64-71

7. राजस्थानी की प्रमुख जैन काव्यशास्त्रीय रचनाएँ 72-76

8. नागौर जनपद के प्रमुख जैन कवि और उनकी रचनाओं में चित्रित ऐतिहासिक संदर्भ 77-87

9. जैन साहित्य में अगड़दत्त कथा - परम्परा एवं कुशललाभ कृत अगड़दत्त-रास 88-98

10. वाचक कुशललाभ का जैन साहित्य को योगदान 99-104

11. तेरापंथ : रचनाकार एवं रचनाएँ 105-113

परिशिष्ट.. 114-116

1

राजस्थानी जैन साहित्य की रूप-परम्परा

विश्व-फलक पर राजस्थान की भूमि गौरवपूर्ण विविध रंगों को ग्रहण किये हुए है। वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, भाषा आदि में विविध सांस्कृतिक चेतना को समन्वित करने वाला यह अकेला प्रदेश है। यहाँ दुर्गाएं और सरस्वती एक ही पटल पर विराजमान है। यही कारण है कि राजस्थान के अणु-अणु में झंकृत रण-कंकण की ध्वनि और खड्गों की खनखनाहट के समान ही यहाँ के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में अवस्थित ज्ञान-भण्डारों में तथा जन-जिह्वा पर सरस्वती-सेवकों की गिरा सुरक्षित है। इन ज्ञान-भण्डारों में बैठकर राजस्थान के मूर्धन्य जैन विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर साहित्य-निर्माण किया जिनमें उनके द्वारा विरचित भक्ति-साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है।

राजस्थान में जैनधर्म के प्रचार की जानकारी हमें महावीर स्वामी के लगभग एक शती बाद से ही मिलने लगती है। पांचवी-छठी शताब्दी तक यह व्यापक रूप से फैल गया। यही धर्म निरन्तर विकसित होता हुआ आज राजस्थान की भूमि पर स्वर्णिम रूप से आच्छादित है।

राजस्थान में मध्यमिका नगरी को प्राचीनतम जैन नगर कहा जाता है।[1] करहेड़ा, उदयपुर, रणकपुर, देलवाड़ा (माउण्ट आबू), देलवाड़ा (उदयपुर), जैसलमेर, नागदा आदि स्थानों में निर्मित जैन-मन्दिर राजस्थान में जैन धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। राजस्थान के साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यापारिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में यहां के जैनियों का अपूर्व योगदान रहा है।

राजस्थान में जैनियों द्वारा लिखित साहित्य की परम्परा का आरंभ 5 वीं-6 ठी

---

1. मज्झमिका, प्रथम अंक, 1973 ई. (डा. ब्रजमोहन जावलिया का लेख)

शताब्दी से माना जा सकता है। ये मुनि प्राकृत-भाषा में साहित्य लिखते थे। प्रथम जैन साहित्यकार का गौरव भी राजस्थान की भूमि को ही प्राप्त कहा जाता है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर राजस्थान के प्राचीनतम साहित्यकार थे।

राजस्थान के जैन मुनियों को साहित्य के लिए प्रेरित किया यहां की राज्याश्रय प्रवृत्ति, धर्मभावना एवं गुरु और तीर्थंकरों की भावोत्कर्षक मूर्तियों ने। जैन परम्परा में उपाध्याय पद की इच्छा ने भी इन मुनियों को श्रेष्ठ साहित्य की रचना के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार श्रमण-संस्कृति के परिणामस्वरूप राजस्थान की इस पवित्र गौरवान्वित भूमि पर उत्कृष्ट कोटि का जैन-धार्मिक साहित्य का भी अपनी विशिष्ट शैलियों में सृजन होने लगा। अपनी साहित्यिक विशिष्टता के कारण यह साहित्य जैन-शैली के नाम से जाना जाता है। जैन शैली के अद्यतन प्रमुख साहित्यकारों के नाम हैं—आचार्य सिद्धसेन, आचार्य हरिभद्र, उद्योतनसूरि, जिनेश्वरसूरि, महेश्वरसूरि, जिनदत्तसूरि, शालिभद्रसूरि, नेमिचन्द्र सूरि, गुणमाल मुनि, विनयचन्द्र, सोममूर्ति, अम्बदेव सूरि, जिनपद्म सूरि, तरुणप्रभसूरि, मेरुतनंदन, राजेश्वर सूरि, जयशेखरसूरि, हीरानन्द सूरि, रत्नमण्डन गणि, जयसागर, कुशललाभ, समयसुंदर गणि, ठक्कुर फेरु, जयसिंह मुनि, वाचक कल्याणतिलक, वाचक कुशलधीर, हीरकलश मुनि, मालदेवसूरि, नेमिचन्द भण्डारी, आचार्य श्री कालूरामजी, आचार्य श्री तुलसी, आचार्य श्री घासीरामजी, आचार्य श्री आत्माराम जी प्रभृति।[1]

इन सभी साहित्यकारों ने यों तो जैन धर्म से सम्बन्धित रचनाओं का ही सृजन किया, जिनका प्रधान रस शान्त है, किंतु गहराई के साथ अध्ययन के उपरान्त यह साहित्य जनोपयोगी भी सिद्ध होता है। जीवन से सम्बन्धित विविध विषय एवं सृजन की विविध विधाएं इस साहित्य में उपलब्ध होती है। यद्यपि इस साहित्य में कलात्मकता का अभाव अवश्य है, किन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समस्त राजस्थानी जैन साहित्य शोध के लिए व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त 13-15 वीं शताब्दी तक के जैनेत्तर राजस्थानी ग्रन्थ स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं है, उसकी पूर्ति भी राजस्थानी जैन साहित्य करता है।

17 वीं शताब्दी राजस्थानी जैन साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाना चाहिए। इस समय तक गुजरात एवं राजस्थान की भाषाओं में भी काफी अन्तर आ चुका था। किन्तु जैन साधुओं के विहार दोनों प्रान्तों में होने से तथा उनकी पर्यटन-प्रवृत्ति के

---

1. पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी महाराज अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 199

कारण यह अन्तर लक्षित नहीं होता था। विविध काव्य-रूप और विषय अब तक पूर्णतः विकसित हो चुके थे। श्री अगरचंद नाहटा ने इन काव्य रूपों अथवा विधाओं की संख्या निम्नलिखित 117 शीर्षकों में बताई है—

(1) रास, (2) संधि, (3) चौपाई, (4) फागु, (5) धमाल, (6) विवाहलो, (7) धवल, (8) मंगल, (9) वेलि, (10) सलोक, (11) संवाद, (12) वाद, (13) झगड़ो, (14) मातृका, (15) बावनी, (16) कछा, (17) बारहमासा, (18) चौमासा, (19) कलश, (20) पवाड़ा, (21) चर्चरी, (22) जन्माभिषेक, (23) तीर्थमाला, (24) चैत्य परिपाटी, (25) संघ वर्णन, (26) ढाल, (27) ढालिया, (28) चौढालिया (29) छढालिया, (30) प्रबन्ध, (31) चरित्र, (32) सम्बन्ध, (33) आख्यान, (34) कथा, (35) सतक, (36) बहोत्तरी, (37) छत्तीसी, (38) सत्तरी, (39) बत्तीसी, (40) इक्कीसी, (41) इकत्तीसो, (42) चौबीसो (43) बीसी, (44) अष्टक, (45) स्तुति, (46) स्तवन, (47) स्तोत्र, (48) गीत, (49) सज्झाय, (50) चैत्यवंदन, (51) देववन्दन, (52) वीनती, (53) नमस्कार, (54) प्रभाती, (55) मंगल, (56) सांझ, (57) बधावा, (58) गहूंली, (59) हीयाली, (60) गूढ़ा, (61) गज़ल, (62) लावणी (63) छंद, (64) नीसांणी, (65) नवरसो, (66) प्रवहण, (67) पारणो, (68) बाहण, (69) पट्टावली, (70) गुर्वावली, (71) हमचड़ी, (72) हींच, (73) माल-मालिका, (74) नाममाला, (75) रागमाला, (76) कुलक, (77) पूजा, (78) गीता, (79) पट्टाभिषेक, (80) निर्वाण, (81) संयम (82) श्री विवाह-वर्णन (82) भास, (83) पद, (84) मंजरी, (85) रसावली, (86) रसायन, (87) रसलहरी, (88) चन्द्रावला, (89) दीपक (90) प्रदीपिका, (91) फुलड़ा, (92) जोड़, (93) परिक्रम, (94) कल्पलता, (95) लेख, (96) विरह, (97) मंदड़ी, (98) सत, (99) प्रकाश, (100) होरी, (101) तरंग, (102) तरंगिणी, (103) चौक, (104) हुंडी, (105) हरण, (106) विलास, (107) गरबा, (108) बोली, (109) अमृतध्वनि, (110) हालरियो, (111) रसोई, (112) कड़ा, (113) झूलणा, (114) जकड़ी, (115) दोहा, (116) कुंडलिया, (117) छप्पय।[1]

इन नामों में विवाह, स्तोत्र, वंदन, अभिषेक, आदि से सम्बन्धित नामों की पुनरावृत्ति हुई है। इसके अतिरिक्त विलास, रसायन, विरह, गरबा, झूलणा प्रभृति काव्य-विधाएँ चरित, कथा-काव्य एवं ऋतु-सम्बन्धी काव्य रूप में ही समाहित हो जाते हैं। अतः इन सभी काव्यों का मोटे रूप में इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है—

---

1. भारतीय विद्या मन्दिर, बीकानेर—प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, पृ. 2-3

1. पद्य—

(क) **प्रबन्ध काव्य**—(अ) *कथा चरित काव्य*—रस, आख्यान, चरित्र, विलास, चौपाई, संधि, सम्बन्ध, प्रकाश, रुपक, गाथा इत्यादि ।

(आ) *ऋतुकाव्य*—फागु, धमाल, बारहमासा, चौमासा, छमासा, विरह, होरी, चौक, चर्चरी, झूलणा इत्यादि ।

(इ) *उत्सवकाव्य*—विवाह, मंगल, मूंदड़ी, गरबा, फुलड़ा, हालरियो, धवल, जन्माभिषेक, बधावा ।

(ख) **मुक्तक काव्य**—(अ) *धार्मिक*—तीर्थमाला, संघ-वर्णन, पूजा, विनती, चैत्यपरिपाटी, ढाल, मातृका, नमस्कार, परभाति, स्तोत्र, निर्वाण, छंद, गीत आदि ।

(आ) *नीतिपरक*—कक्का बत्तीसी, बावनी, शतक, कुलक, सलोका, बोली, गूढ़ा आदि ।

(इ) *विविध मुक्तक रचनाएँ*—गीत, गज़ल, लावणी, हमचढ़ी, हींच, छंद, प्रवहण, भास, नीसाणी, बहोत्तरी, छत्तीसी, इक्कीसो आदि संख्यात्मक काव्य, शास्त्रीय काव्य ।

2. गद्य—

टब्बा, बालावबोध, गुर्वावली, पट्टवाली, विहार-पत्र, समाचारी, विज्ञप्ति, सीख, कथा, ख्यात, टीका ग्रन्थ इत्यादि ।

जैन साहित्य की इन विद्याओं में से कतिपय का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

पद्य काव्य

(1) रासौ काव्य :

रास, रासक, रासो, राइसौ, रायसौ, रायड़, रासु आदि नामों से रासौ नामपरक रचनाएं मिलती हैं । वस्तुतः भाषा के परिवर्तन के अनुसार विभिन्न कालों में ये नाम प्रचलित रहे । विद्वानों ने रासौ की उत्पत्ति विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की है । आचार्य शुक्ल बीसलदेव रासो के आधार पर 'रसाइन' शब्द से रासो की उत्पत्ति मानते हैं ।[1] प्रथम इतिहास लेखक गार्सेदतासी ने 'राजसूय' शब्द से रासौ की उत्पत्ति मानी है ।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 32
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा. दशरथ ओझा रासौ शब्द को संस्कृत के शब्द से व्युत्पन्न न मानकर देशी भाषा का ही शब्द मानते हैं, जिसे बाद में विद्वानों ने संस्कृत से व्युत्पन्न मान लिया है ।[1] डा. मोतीलाल मेनारिया रासौ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"चरितकाव्यों" में रासौ ग्रन्थ मुख्य है । जिस काव्य ग्रन्थ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे रासो कहते हैं ।[2]

निष्कर्ष रूप में रासौ रसाइन शब्द से व्युत्पन्न माना जा सकता है । जैन-साहित्य के संदर्भ में ये लौकिक और शृंगारिक गीत रचनाएं हैं, जिसमें जैनियों ने अनेक चरित काव्यों का निर्माण किया । ये रासौ काव्य शृंगार से आरम्भ होकर शान्तरस में परिणत होते है । यही जैन रासौ काव्य का उद्देश्य है । इस परम्परा में लिखे हुए प्रमुख रासौ ग्रन्थ हैं—विक्रमकुमार रास (साधुकीर्ति)[3], विक्रमसेन रास (उदयभानु)[4], बेयरस्वामी रास (जयसागर)[5], श्रेणिक राजा नो रास (देपाल)[6], नलदवदंती रास (ऋषिवर्द्धन सुरि)[7], शकुन्तला रास (धर्मसमुद्र गणि)[8], तेतली मंत्री रास (सहजसुंदर)[9] वस्तुपाल-तेजपाल रास (पार्श्वचंद्र सूरि)[10], चंदनबाला रास (विनयसमुद्र)[11], जिनपालित जिनरक्षित रास (कनकसोम)[12], तेजसार रास, अगड़दत्त रास (कुशललाभ)[13], अंजनासुन्दरीरास (उपाध्याय गुणविनय)[14]

---

1. हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास, पृ. 70 (द्वितीय संस्करण)
2. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ. 24 (1952 ई.)
3. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 34-35
4. वही, पृ. 113
5. वही, पृ. 27
6. वही, पृ. 37, भाग 3, पृ. 446, 496
7. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ. 750, 768
8. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 116, भाग 3, पृ. 548
9. वही, भाग 1, पृ. 120, भाग 3, पृ. 557
10. वही, भाग 1, 139 पृ., भाग 3, पृ. 586
11. राजस्थान भारती, भाग 5, अंक 9, जनवरी 1956
12. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि, पृ. 194-95
13. मनमोहनस्वरूप माथुर—कुशललाभ ; व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 27
14. शोध पत्रिका, भाग 8, अंक 2-3, 1956 ई.

(2) चौपाई (चउपई, चउपाई) :

रासौ विधा के पश्चात् जैन-साहित्य में सर्वाधिक रचनाएं चौपाई नाम से मिलती है। यह नाम छन्द के आधार पर है। चौपाई सममात्रिक छन्द है, जिसके प्रत्येक चरण में पन्द्रह एवं सोलह मात्राएं होती है।

17 वीं शताब्दी तक रासौ और चौपाई परस्पर पर्याय रूप में प्रयुक्त होने लगे। कुछ उल्लेखनीय चौपाई काव्य निम्नलिखित हैं—पंचदण्ड चौपाई (1556 अज्ञात कवि)[1], पुरन्दर चौपई (मालदेव)[2], चंदन राजा मलयागिरी चौपाई (हीरविशाल के शिष्य द्वारा रचित)[3], चंदनबाला चरित चौपाई (देपाल)[4], मृगावती चौपाई (विनयसमुद्र)[5], अमरसेन वयरसेन चौपाई (राजशील)[6], माधवानल कामकंदला चौपाई, ढोला-मारवणी चौपाई[7], भीमसेन हंसराज चौपाई (कुशललाभ)[8], देवदत्त चौपाई (मालदेव)[9],आषाढ भूति चौपाई (कनकसोम)[10], गोराबादल पद्मिनी चौपाई (हेमरत्न सूरि)[11], गुणसुन्दरी चौपई (गुणविनय)[12]।

(3) सन्धि काव्य :

अपभ्रंश महाकाव्यों के अर्थ में संधि शब्द का प्रयोग होता था। महाकाव्य के लक्षण बताते हुए हेमचन्द्र ने कहा है कि संस्कृत महाकाव्य सर्गों में, प्राकृत आश्वासों

---

1. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 99
2. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 98-100
3. कल्पना-दिसम्बर, 1957, पृ. 81
4. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 37
5. राजस्थान भारती, भाग 5, अंक 1, जनवरी, 1956
6. जैन गुर्जर कविओ, भाग 3, पृ. 539
7. सं. मोहनलाल दलीचंद देसाई-आनन्द काव्य महोदधि, मौ. 7
8. एल.डी. इंस्टीट्युट, अहमदाबाद, हस्तलिखित ग्रंथ 943
9. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग-2
10. युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि, पृ. 194-95
11. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (प्रकाशित)
12. शोध पत्रिका, भाग 8, अंक 2-3, 1956 ई.

में अपभ्रंश संधियों में एवं ग्राम स्कन्धों में निबद्ध होता है ।[1] भाषा-काव्य (राजस्थानी) में संधि नाम की रचनाएं 14 वीं शताब्दी से मिलने लगती है । कतिपय संधि काव्य इस प्रकार है—आनंद संधि (विनयचंद), केशी गौतम संधि (कल्याणतिलक)[2], नंदनमणिहार संधि (चारुचंद्र), उदाहरणर्षि संधि, राजकुमार संधि (संयममूर्ति), सुबाहु संधि (पुण्यसागर), जिनपालित जिनरक्षित संधि, हरिकेशी संधि (कनकसोम), चउसरण प्रकीर्णक संधि (चारित्रसिंह), भावना संधि (जयसोम) अनाथी संधि (विमलविनय), कयवला संधि (गुणविनय) ।[3]

(4) प्रबन्ध, चरित, सम्बन्ध, आख्यान, कथा, प्रकाश, विलास, गाथा इत्यादि :

ये सभी नाम प्रायः एक दूसरे के पर्याय है । जो ग्रंथ जिसके सम्बन्ध में लिखा गया है, उसे उसके नाम सहित उपर्युक्त संज्ञाएं दी जाती हैं । इन नामों से सम्बन्धित कुछ काव्य रचनाओं के नाम है—भोज चरित (मालदेव)[4], अंबड चरित (विनयसुंदर)[5], नवकारप्रबन्ध (देपाल)[6], भोजप्रबन्ध (मालदेव)[7], कालिकांचार्य कथा, आषाढभूति चौपाई सम्बन्ध (कनकसोम)[8] विद्या-विलास (हीरानन्द सूरि)[9] ।

(5) पवाड़ो और पवाड़ा :

पवाड़ा शब्द की व्युत्पत्ति भी विवादास्पद है । डा. सत्येन्द्र, इसे परमार शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं ।[10] पवाड़ों में वीरों के पराक्रम का प्रयोग होता है ।[11] यह महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोकछन्द भी है । बंगाली में वर्णात्मक कविता अथवा लम्बी कविता के

---

1. डा. हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 237
2. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 37
3. डा. हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य
4. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 305
5. राजस्थान भारती, भाग 5, अंक 1 जनवरी 1956 ई.
6. जैन गुर्जर कविओ, पृ. 37
7. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 98-100
8. युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि, पृ. 194-85
9. डा. माहेश्वरी-राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 248
10. मरूभारती, वर्ष 1, अंक 3, सं. 2010
11. कल्पना, वर्ष 1, अंक 1, 1949 ई. (हिंदी और मराठी साहित्य-पाचवें)

कथात्मक भाग को पयार कहते हैं। बंगाली में भी यह एक छन्द है। पयार की उत्पत्ति संस्कृत के प्रवाद से मानी जाती है।[1] डा. मंजुलाल र.मजुमदार के अनुसार पवाड़ो वीर का प्रशस्ति काव्य है। रचनाबन्ध की दृष्टि से विविध तत्वो के आधार पर वे आसाइत के हंसावली प्रबन्ध, भीम के सदयवत्सवीर प्रबन्ध तथा शालिभद्रसूरि के विराट पर्व के अन्तर्गत मानते हैं।[2] पवाड़ा के लिए प्रवाड़ा शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[3]

इस प्रकार पवाड़ा या पवाड़ो का प्रयोग कीर्ति-गाथा, वीरगाथा, कथाकाव्य अथवा चरित काव्यों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रवाद शब्द से मानी जा सकती है—सं.प्रवाद-प्रा.पवाअ = पवाड़अ-पवाड़ो। चारण साहित्य में इसका प्रयोग बहुधा वीर-गाथाओं के लिए हुआ है तथा जैन साहित्य में धार्मिक ऋषि-मुनियों के वर्चस्व को प्रतिपादित करने वाले ग्रंथों के लिए। जैन साहित्य में इस नाम की प्रथम रचना हीरानन्दसूरि रचित विद्याविलास पवाड़ा (वि.सं. 1485) को माना जाता है।[4] ऐसी ही अन्य कृति है-बंकचूल पवाड़ो (ज्ञानचंद्र)[5]।

(6) ढाल :

किसी काव्य के गाने की तर्ज या देशी को ढाल कहते हैं। 17 वीं शताब्दी से जब रास, चौपाई आदि लोकगीतों की देशियों में रचे जाने लगे तब उनको ढालबंध कहा जाने लगा। प्रबन्ध काव्यों में ढालों के प्रयोग के कारण ही इसका वर्णन प्रबन्ध काव्य की विधा में किया जाता है, अन्यथा यह पूर्णतः मुक्तक काव्य की विधा है। जैन-साहित्य में अनेक भजनों का ढालों में प्रणयन हुआ। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने लगभग 2500 देशियों की सूची दी है।[6] कुछ प्रमुख ढालों के नाम इस प्रकार हैं—ढाल वेली नी, ढाल मृगांकलेखा नी, ढाल संधि नी, ढाल वाहली, ढाल सामेरी, ढाल उल्लाला।[7]

---

1. डा. हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 236
2. गुजराती साहित्य नो स्वरूपो, पृ. 123, 125
3. मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ. 71
4. गुर्जर रासावली-एम.एस. यूनीवर्सिटी प्रकाशन
5. जैन गुर्जर कविओ, भाग-3, पृ. 543-44
6. आनन्द काव्य महोदधि, मो.7
7. सं. भंवरलाल नाहटा-ऐतिहासिक काव्य-संग्रह

(7) फागु काव्य :

ऋतु-वर्णन में फागु-काव्य जैन साहित्य की विशिष्ट साहित्यिक विधा है। फाल्गुन-चैत्र (वसन्त ऋतु) मास में इस काव्य को गाने का प्रचलन है। इसलिए इन्हें फागु या फागु-काव्य भी कहा जाता है। गरबा भी ऐसे उत्सवों पर गाये जाने वाले नृत्यगीत हैं। फागु और गरबा रास काव्य के ही प्रभेद हैं। इन काव्यों में शृंगार-रस के दोनों रूपों—संयोग और वियोग का चित्रण किया जाता है। प्रवृत्तियों एवं काव्य शैली के आधार पर विद्वानों ने फागु की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से मानी है। डा.बी.जे.साण्डेसरा फागु को संस्कृत के फला शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं—फला-फगु-फागु।[1] 'डिंगल कोश' में फाल्गुन के पर्यायवाची फालगुण और फागण बताये हैं।[2] इन व्युत्पत्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि फागु का उद्‌भव गेय-रूपकों, काव्यों में बसन्तोत्सव मनाने से हुआ है।

इनमें मुख्य रूप से संयमश्री के साथ जैन मुनियों के विवाह, शृंगार, विरह और मिलन वर्णित होते हैं। जैन मुनि चूंकि सांसारिक बन्धन तोड़ चुके हैं, अतः उनके लौकिक विवाह का वर्णन इनमें नहीं मिलता। इन्हीं विषयों को लेकर जैन मुनियों ने 14 वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी तक अनेक ऋषियों से सम्बन्धित फागु काव्यों का निर्माण किया। इस शृंखला की प्राचीनतम रचना जिनचन्द सूरि फागु (वि.सं.1349-1373) कही गयी है।[3] अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं इस प्रकार है—स्थूलभद्र फाग (देपाल)[4], नेमिफाग (कनकसोम)[5], नेमिनाथ फाग[6], जम्बूस्वामी फाग[7] आदि।

(8) धमाल :

फागु-काव्यों के पश्चात् धमाल-काव्य-रूप का विकास हुआ। यों फागु और धमाल की विषय-वस्तु समान ही है। होली के अवसर पर आज भी ब्रज और राजस्थान

---

1. प्राचीन फागु-संग्रह, पृ. 53
2. परम्परा
3. सम्मेलन पत्रिका (नाहटाजी का निबंध 'राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता)
4. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 37, पृ. 446, 496
5. जैन साहित्य, नो संक्षिप्त इतिहास, पृ. 896
6. सम्मेलन पत्रिका
7. सी.डी. दलाल-प्राचीन गुर्जर कवि-संग्रह, पृ. 41, पद 27

में धमालें गाने का रिवाज है । यह एक लोक-परम्परा का शास्त्रीय राग है । जैन कवियों ने इस परम्परा में अनेक रचनाएं की है । यथा-आषाढभूति धमाल, आर्द्रकुमार, धमाल (कनकसोम)[1] नेमिनाथ धमाल (मालदेव)[2] इत्यादि ।

(9) चर्चरी (चांचरी) :

धमाल के समान ही चर्चरी भी लोकशैली पर विरचित रचना है । ब्रजप्रदेश में चंग (ढप्प) की ताल के साथ गाये जाने वाले फागुन और होली के गीतों को चर्चरी कहते हैं । अतः वे संगीतबद्ध राग-रागनियों में बद्ध रचनाएं जो नृत्य के साथ गायी जाती है, चर्चरी कहलाती हैं । प्राकृतपैंगलम् में चर्चरी को छन्द कहा गया है ।[3]

जैन साहित्य में चर्चरीसंज्ञक रचनाओं का आरम्भ 14 वीं शताब्दी से हुआ ।[4] जिनदत्तसूरि एवं जिनवल्लभसूरि की चरचरियाँ विशेष प्रसिद्ध है, जो गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित हैं ।

(10) बारहमासा :

बारहमासा, छमासा, चौमासा-संज्ञक काव्यों में कवि वर्ष के प्रत्येक मास, ऋतुओं अथवा कथित मासों की परिस्थितियों का चित्रण करता है । इसका प्रमुख रस विप्रलम्भ शृंग़ार होता है । नायिका के विरह को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति-चित्रण भी इन रचनाओं में सघन रूप में मिलता है । मासों पर आधारित जैन साहित्य की यह विधा लोक-साहित्य से गृहीत है । बारहमासा का वर्णन प्रायः आषाढ मास से आरम्भ किया जाता है । जैन कवियों ने बारहमासा, छमासा अथवा चौमासा काव्य परम्परा के अन्तर्गत अनेक कृतियां लिखी है, यथा—नेमिनाथ बारहमासा चतुष्पदिका (विनयचंद्रसूरि)[5], नेमिनाथ राजिमति बारमास (चारित्र कलश) ।[6]

जैन-रास, चौपाई, फागु-संज्ञक रचनाओं में इन कवियों ने यथा-प्रसंग बारहमासा आदि के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं । कुशललाभ की माधवानल कामकंदला,

---

1. युगप्रधान जिनचंद्र सूरि, पृ. 194-95
2. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग 2
3. हिन्दी छन्दप्रकाश, पृ. 131
4. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष 12, अंक 6, (हीरालाल कावडिया का 'चर्चरी' नामक लेख)
5. प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह
6. गुजराती साहित्य नो स्वरूपो, पृ. 279

अगड़दत्त रास, ढोला मारवणी चौपई, स्थूलिभद्र छत्तीसी, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओं से इनके श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(11) विवाहलो, विवाह, धवल, मंगल :

जिस रचना में विवाह का वर्णन हो, उसे विवाहला और इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को धवल या मंगल कहा जाता है। विवाह-संज्ञक रचनाओं में जिनेश्वर सूरि कृत संयमश्री विवाह वर्णन रास एवं जिनोदय सूरि विवाहला अब तक प्राप्त रचनाओं में प्राचीनतम हैं[1] तथा धवल-संज्ञक रचनाओं में जिनपति सूरि का धवलगीत प्राचीनतम माना गया है।[2] इन नामों से सम्बन्धित अन्य रचनाएं हैं—नेमिनाथ विवाहलो (जयसागर)[3], आर्द्रकुमार धवल (देपाल)[4], महावीर विवाहलड (कीर्तिरत्न सूरि), शान्तिविवाहलउ (लक्ष्मण), जम्बू अंतरंग रास विवाहलउ (सहजसुंदर), पार्श्वनाथ विवाहलउ (पेथो), शान्तिनाथ विवाहलो धवल प्रबन्ध (आणन्द प्रमोद), सुपार्श्वजिन-विवाहलो (ब्रह्मविनयदेव)।[5]

(12) वेलि :

रचना-प्रकार की दृष्टि से वेलि हिन्दी के लता वल्ली (वल्लरी) आदि काव्य रूपों की तरह है। इसमें भी विवाह-प्रसंग का ही चित्रण किया जाता है। चारण कवियों द्वारा रचित कृतियों में वि.सं. 1528 के आसपास रचित बाछा कृत चिहुंगति वेलि सबसे प्राचीन कही जाती है।[6] अन्य महत्वपूर्ण जैन-वेलियां हैं—जम्बूवेलि (सीहा), गरभवेलि (लावण्यसमय), गरभवेलि (सहजसुन्दर), नेमि राजुल बारहमासा वेलि (वि.सं. 1615), स्थूलिभद्र मोहन वेलि (जयवंत सूरि) जहत पद वेलि (कनकसोम)[7] इत्यादि।

---

1. सं. भंवरलाल नाहटा—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
2. डा. माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 244
3. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ. 400
4. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ. 897
5. जैन सत्यप्रकाश, अंक 10-11, वर्ष 11, क्रमांक 130-31
6. डा. माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 243
7. जैन धर्म प्रकाश, वर्ष 65, अंक 2 (हीरालाल कावड़िया का लेख)

(13) मुकतक-काव्य :

राजस्थानी जैन मुक्तक काव्य का अध्ययन धार्मिक, नीतिपरक एवं इतर धार्मिक शीर्षकों में किया जा सकता है। धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत जैन कवियों ने गीत, कवित्त, तीर्थमाला, संघवर्णन, पूजा, विनती, चैत्य, परिपाटी, मातृका, नमस्कार, परभाति, स्तुति, स्तोत्र, मूंदड़ी, सज्झाय, स्तवन, निर्वाण, पूजा, छन्द, चौबीसी, छत्तीसी, शतक, हजारा, आदि नामों से की है। इन रचनाओ में तीर्थंकरों, जैन महापुरुषों, साधुओं, सतियों, तीर्थों आदि के गुणों का वर्णन किया जाता है। दुर्गुणों के त्याग और सद्गुणों के ग्रहण करने के गीत तथा आध्यात्मिक गीत भी धार्मिक मुक्तक काव्य की विषय-वस्तु है। कुछ उल्लेखनीय रचनाएं हैं— चौबीस जिनस्तवन, अजितनाथ स्तवन, विनती, अष्टापद तीर्थ बावनी, चतुरविंशती जिनस्तवन, अजितनाथ विनती, पंचतीर्थकर नमस्कारस्तोत्र, महावीर वीनती, नगरकोट-साहित्य परिपाटी, चैत्य परिपाटी, शान्तिनाथ वीनती (जयसागर)[1], स्नात्रपूजा, थावच्याकुमार रास (देपाल)[2], नेमिगीत (मतिशेखर)[3] गुणरत्नाकर-छंद, ईलातीपुत्र-सज्झाय, आदिनाथ शंत्रुजय स्तवन, (सहजसुन्दर)[4], साधुवंदना, उपदेश रहस्य गीत, वीतरागस्तवन ढाल, आगमछत्रीशी, एषणाशतक, शंत्रुजय स्तोत्र (पार्श्व सूरि)[5], स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन, गोड़ी-पार्श्वनाथ छंद, पूज्यवाहण गीत, नवकार छंद (कुशललाभ)[6], महावीर पंचकल्याण स्तवन, मनभमरागीत (मालदेव)[7], सोलहस्वप्न सज्झाय (हीरकलश)[8] इत्यादि।

नीतिपरक रचनाएं—

यदि जैन साहित्य को उपदेश, ज्ञान और नीतिपरक भी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कारण, जैन कवियों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक प्रचार करना था। अपने

---

1. शोधपत्रिका, भाग 9, अंक 1, दिस. 1957 ई.
2. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, भाग 3, पृ. 446
3. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ. 768
4. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 120, भाग 3, पृ. 557 (1992)
5. वही, पृ. 139, भाग 3, पृ. 586
6. डा. मनमोहन स्वरूप माथुर—कुशललाभ व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 41, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक
7. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 98-100
8. शोध पत्रिका, भाग 7, अंक 4

उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने संवाद, कक्का, बत्तीसी, मातृका, बावनी, कुलक, हियाली, हरियाली, गूढ़ा, पारणी, सलोक, कड़ी, कड़ा इत्यादि साहित्यिक विधाओं को ग्रहण किया। इनमें से उल्लेखनीय विधाओं का परिचय इस प्रकार है—

(14) संवाद :

इनमें दोनों पक्ष एक-दूसरे को हेय बताते हुए अपने पक्ष को सर्वोपरि रखते हैं। दोनों ही पक्षों की मूलभावना सम्यक्ज्ञान करवाना है। कुछ संवाद जैनेत्तर विषयों पर भी है। संवाद संज्ञक रचनाएं 14 वीं शताब्दी से मिलने लगती हैं। कुछ उल्लेखनीय संवाद निम्नलिखित हैं—आंख-कान संवाद, यौवन-जरा संवाद (सहजसुंदर), कर-संवाद, रावण-मंदोदरी संवाद, गोरी-सांवली संवाद-गीत (लावण्यसमय), जीभ-संवाद, मोती-कपासिया संवाद (हीरकलश), सुखड़ पंचक संवाद (नरपति) इत्यादि हैं।[1]

(15) कक्का-मातृका-बावनी-बारहखड़ी :

ये सभी नाम परस्पर पर्याय हैं। इनमें वर्णमाला के बावन अक्षर मानकर प्रत्येक वर्ग के प्रथम अक्षर से आरम्भ कर प्रासंगिक पद रचे जाते हैं। बावनी नाम इस संदर्भ में 16 वीं शताब्दी से प्रयोग में आया है। ऐसी प्रकाशित कुछ रचनाएं हैं-छीहल बावनी[2], डूंगर बावनी (पद्मनाभ)[3], शीलबावनी (मालदेव)[4], जगदम्बा बावनी (हेमरत्न सूरि)।[5]

(16) कुलक या खुलक :

जिस रचना में किसी शास्त्रीय विषय की आवश्यक बातें संक्षेप में संकलित की गई हो अथवा किसी व्यक्ति का संक्षिप्त परिचय दिया गया हो-ऐसी रचनाएं कुलक कही जाती है।[6] 16 वीं-17 वीं शताब्दी के कतिपय कुलक इस प्रकार हैं-ब्रह्मचर्य

---

1. डा. माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 245
2. अनुप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति संख्या 282/2 (झ)
3. श्री अभय जैन ग्रंथमाला, बीकानेर हस्तलिखित प्रति
4. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग 2
5. डा. माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 266
6. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 58, अंक 4, सं. 2010

दशसमाधिस्थान कुलक, वंदन दोष 32 कुलक, गीतार्थ पदावबोध कुलक (पार्श्वचन्द्र सूरि)[1], दिनमान कुलक (हीरकलश)।[2]

(17) हीयाली :

कूट या पहेली को हीयाली कहते हैं।[3] हीयालियों का प्रचार सोलहवीं शताब्दी से हुआ। इस काव्यशैली की प्रमुख कृतियां हैं-हरियाली (देपाल), गुरु-चेला-संवाद (पिंगल शिरोमणि कुशललाभ कृत के अंश)[4], अष्टलक्ष्मी (समयसुन्दर)[5] इत्यादि।

(18) विविध मुक्तक रचनाएं :

जैन कवियों ने जैन धर्म से हटकर अन्य विषयों पर भी गीत, छंद, छप्पय, गजलें, पद, लावणियां, भास, शतक, छत्तीसी आदि नामों से भी रचनाएं की हैं। इनके विषय इतिहास, उत्सव, विनोद आदि हैं। इनके अतिरिक्त जैन-मुनियों ने शास्त्रीय विषयों को भी अपने साहित्य का आधार बनाया। इस दृष्टि से व्याकरण, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष प्रभृति अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ एवं उन पर टीकाएं उपलब्ध हैं। संख्याधारी रचनाओं में छन्दों की प्रमुखता होती है। कहीं-कहीं उनमें निहित कथाओं अथवा उपदेशों को भी ये संख्या द्योतित करते हैं। जैसे-वेताल पच्चीसी (ज्ञानचंद्र)[6] सिंहासन बत्तीसी (मलयचंद)[7], विल्हण पंचाशिका (ज्ञानाचार्य)।[8] संख्या नामधारी काव्य-रचनाओं में इन्होंने अधिकांशतः धार्मिक स्तुतियां ही लिखी है। महत्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ निम्नांकित हैं—

(क) व्याकरण शास्त्र—बाल-शिक्षा, उक्ति रत्नाकार, उक्तिसमुच्चय, हेमव्याकरण[9],

---

1. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 139, भाग 3, पृ. 586
2. शोध पत्रिका, भाग 7, अंक 4, सं. 2021 (राजस्थान के एक बड़े कवि हीरकलश)
3. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1,3
4. परम्परा, भाग 13, राजस्थान भारती, भाग 2, अंक 1, 1948 ई.
5. आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक 7
6. जैन गुर्जर कविओ, भाग 1, पृ. 545
7. वही, पृ. 474
8. वही, पृ. 636
9. पूज्यप्रवर्तक श्री अंबालालजी महाराज अभिनंदन ग्रंथ (राजस्थानी जैन साहित्य" नामक लेख) प. 460

उडिंगल-नाममाला ।[1]

(ख) काव्याशास्त्रीय ग्रंथ—पिंगलशिरोमणि, दूहाचंद्रिका, वृत्तरत्नाकर, विदग्ध मुखमंडनबालावबोध इत्यादि ।

(ग) गणितशास्त्र—लीलावती-भाषा चौपाई, गणितसार-चौपाई, गणित साठिसो इत्यादि ।

(घ) ज्योतिष शास्त्र—पंचांग-नयन चौपाई, शकुनदीपिका चौपाई, अंगफुरकन चौपाई, वर्षफलाफल सज्झाय आदि ।[2]

गद्य-साहित्य

(19) जैनियों ने पद्य के साथ-साथ राजस्थानी को श्रेष्ठ कोटि की गद्य रचनाएं भी दी हैं । हिन्दी ग्रन्थ के विकास-क्रम की भी यही परम्परा प्रथम सोपान है । जैनियों द्वारा लिखित गद्य के दो रूप मिलते हैं-गद्य-पद्य मिश्रित तथा शुद्ध गद्य । गद्य-पद्यमिश्रित गद्य संस्कृत-चम्पू साहित्य के समान ही वचनिका साहित्य के नाम से अभिहित है । चारण गद्य साहित्य में अनेक वचनिकाएं लिखी गई है । जैन शैली में इस परम्परा की उपलब्ध रचनाएं हैं-जिनसमुद्रसूरि री वचनिका, जयचन्दसूरिकृत माताजी री वचनिका (18 वीं शती वि.) ।

(20) टीका-टब्बा-बालावबोध :

काव्य, आयुर्वेद, व्याकरण प्रभृति मूल रचनाओं के स्पष्टीकरण के लिए पत्रों के किनारों पर जो संक्षिप्त गद्य-टिप्पणियां हाशिये पर लिखी जाती हैं उन्हें टब्बा तथा विस्तृत स्पष्टीकरण को बालावबोध कहा जाता है । विस्तार के कारण बालावबोध सुबोध होता है । इसमें विविध दृष्टान्तों का भी प्रयोग किया जाता है । मूल पाठ पृष्ठ के बीच में अंकित होता है । इस शैली में लिखित साहित्य ही टीका कहलाता है । राजस्थानी जैन टीका साहित्य समृद्ध है । उल्लेखनीय टीकाएं निम्नलिखित हैं—

धूर्ताख्यानकथासार, माधवनिदान टब्बा, वैद्य जीवन टब्बा, शतश्लोकी टब्बा, पथ्यापथ्य टब्बा, विवाहपटुल बालावबोध, भुवनदीपक बालावबोध, मुहुर्त्तचिंतामणि बालावबोध, भर्तृहरि भाषा टीका इत्यादि ।[3]

---

1. परम्परा, भाग 13
2. पूज्यप्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 464
3. वही, पृ. 464

(21) पट्टावली-गुर्वावली :

इनमें जैन लेखकों ने अपनी पट्टावली परम्परा और गुरू-परम्परा का ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णन किया है। ये गद्य-पद्य दोनों रूपों में लिखी गई हैं। तपागच्छ और खरतरगच्छ आदि की पट्टावलियां तो प्रसिद्ध हैं ही, पर प्रायः प्रत्येक गच्छ और शाखा की अपनी पट्टावलियां भी लिखी गई हैं।

(22) विज्ञप्ति पत्र, विहार पत्र, नियम-पत्र, समाचारी :

इन पत्रों के अन्तर्गत जैनाचार्यों के भ्रमण, उनके नियम एवं श्रावकों को चातुर्मास, निवास इत्यादि की सूचनाओं का वर्णन किया जाता है। विज्ञप्ति पत्रों में मार्ग में आने वाले नगरों, ग्रामों का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया जाता है। पत्र लेखन शैली की दृष्टि से भी इनका महत्व है।

(23) सीख :

सीख का अर्थ है शिक्षा। जैन लेखकों ने धार्मिक शिक्षा के प्रचार की दृष्टि से जिन गद्य-रचनाओं का निर्माण किया, वे सीख ग्रंथ है।

इस प्रकार राजस्थानी का जैन-साहित्य विविध विधाओं में लिखा हुआ है। कथाकाव्यों, चरितकाव्यों के रूप में इन कवियों और लेखकों ने जहां धार्मिक स्तुतिपरक रचनाओं का निर्माण किया वहीं गद्य रूप में वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। इस साहित्य में चाहे साहित्यिकता का अभाव रहा हो पर भाषा के अध्ययन एवं साहित्यिक रूपों के विकास की दृष्टि से वह महत्वपूर्ण है। जैन साहित्य की आत्मा धार्मिक होने से उसका अंगी रस शान्त है। यों कथा-चरित काव्यों का आरंभ शृंगार रस से ही हुआ है। विक्रम सम्बन्धी रचनाओं एवं गोरा-बादल सम्बन्धी जैन रचनाओं में वीर रस की भी प्रधानता है। प्रत्येक कृति का आरंभ मंगलाचरण, गुरु, सिद्ध, ऋषि की वंदना से हुआ है तथा अन्त नायक के संन्यास एवं उसकी सुचारू गृहस्थी के चित्रण द्वारा। चरित-काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं के अन्दर लौकिक दृष्टान्तों का स्पर्श है। राजस्थानी जैन गद्य का हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, किन्तु ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य का संकलन अभी तक अपूर्ण है।

◆ ◆ ◆

2

मध्यकालीन राजस्थानी जैन रचनाओं में सामाजिक इतिहास संदर्भ (वि.सं. 1600 - वि.सं. 1900)

साहित्य में वि.सं. 1600 से वि.सं. 1900 तक का काल मध्य काल नाम से जाना जाता है। इस युग में साहित्य से सम्बन्धित अनेक आंदोलन हुए। उनसे सम्बन्धित एवं राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित अनेक साहित्यिक धाराओं का विकास हुआ।

राजस्थान मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। यहां—वैष्णव, सूफी, जैन, धर्मों (सम्प्रदायों) का विकास हुआ। राजा-महाराजाओं की सहिष्णुता के कारण उन्हें राजनीतिक प्रश्रय भी मिला। परिणामतः इन सम्प्रदायों से सम्बन्धित अनेक कवियों ने साम्प्रदायिक रचनाओं का निर्माण किया। इनमें जैन लेखक अग्रणीय रहे।

वि.सं. 1600-1900 के बीच शताधिक ऐसी रचनाएं इन जैन कवियों ने लिखी, जिनका न केवल राजस्थानी साहित्य में महत्व रहा, अपितु इतिहास और हिन्दी साहित्य में भी उनका यथावत महत्व है। कुशललाभ, हीरकलश, समयसुन्दर, हेमरत्न, जटमल, लब्धोदय, मोहनविजय, विनय-लाभ दामोदर, लाभवर्धन, विनयप्रभ, भतिकुशल, राजविजय, कल्याण कलश, रामचंद, रिखसाधु, वीरविजय, उत्तमविजय, हुलासचंद आदि इनमें से उल्लेखनीय नाम हैं। इन कवियों का मूल लक्ष्य तो श्रृंगार-चित्रणों के साथ जैन धर्म के अनुकूल वैराग्य भावना का प्रचार करना रहा है, पर उनमें अनेक स्थलों पर प्रसंगवश तत्कालीन समाज का भी सुन्दर चित्रण हो गया है। ये वर्णन ही तद्‌युगीन समाज को जानने के लिये संदर्भ स्त्रोत है, जो इस शोध पत्र का विषय है।

यहाँ सामाजिक संदर्भ से तात्पर्य है कवि की रचनाओं में चित्रित समाज एवं

कवि के रचना काल में प्रचलित सामाजिक मान्यताओं से । कवि जिस युग का है वह युग भी उसे प्रभावित करता है । अतः उस युग की मान्यताओं का प्रभाव भी कवि की रचनाओं में चित्रित होता है । आलोच्य काल में तेजसार रास चौपई वि.सं. 1624, अगड़दत्त रास, वि.सं. 1625, भीमसेन हंसराज चौपई, वि.सं. 1643 (कुशललाभ), गोरा-बादल चौपई वि.सं. 1645, लीलावती चौपई वि.सं. 1673 (हेमरतन), सुरसुन्दरी रास वि.सं. 1646 (नयसुन्दर), नेमिराजुल बारामास बेल प्रबन्ध वि.सं. 1650 (जयवंत सूरि), मृगावती रास वि.सं. 1668, सिहलसुत चौपई वि.सं. 1672, पुण्यसार चौपई वि.सं. 1673, नलदमयंती चौपई वि.सं. 1673 (सभी समय सुन्दर), पुरन्दरक कुमार चौपई वि.सं. 1672 (मालदेव) हंसावली री वारता वि.सं. 1672 (शिवदास), गोराबादल चौपई वि.सं. 1680 (जटमल) प्रेम विलास प्रेमलता वि.सं. 1693, सदयवत्स सावलिंगा चौपई वि.सं. 1693 (केशव) पद्मिनी चरित्र चौपई, वि.सं. 1680 (लब्धोदय), बछराज चौपई वि.सं. 1737 (विनयलाभ), स्थूलिभद्र कोशा प्रेम विलास वि.सं. 16 वीं शती उत्तरार्द्ध (जयवंत सूरी), माधवानल काम कंदला (1737 दामोदर) रणसिंध कुमार चौपई वि.सं. 1741 (रत्नप्रभ), लीलावती चौपई वि.सं. 1742 (लाभवर्धन), मुहता नैणसी री ख्यात वि.सं. 1667, चंद्रराज चरित्र वि.सं. 1782 (मोहन विजय) नेमिराजुल वेलि वि.सं. 1786 (चतुरविजय) चन्द्रलेहा चोपई वि.सं. 1805 (मतिकुशल) चित्रसेन पदमावती रतनसार चौपाई वि.सं. 1814 (रामविजय) चन्दनमलयागिरी रास चौपाई वि.सं. 1814 (कल्याण कलश), मृगाकंलेखा चौपाई वि.सं. 1838, रामचंद कलावती चौपाई वि.सं. 1861 (रिखुसाधु), नेमिश्वर स्नेह वेलि वि.सं. 1867 (उत्तम विजय) नेमीनाथ रसवेलि वि.सं. 1899, रूपसेन कुमार नो चरित्र वि.सं. 19 वीं शती प्रथम चरण (हुलासचंद) आदि रचनाएँ हैं, जो इस युग के सामाजिक इतिहास में अनेक स्रोतों को उद्घाटित करती है ।

वर्ण व्यवस्था–

वर्ण-व्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन का मूल आधार थी । आलोच्य काल की जैन रचनाओं में समाज की इकाई के रूप में वर्ण-व्यवस्था का चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है । 17 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध जैन कवि समयसुन्दर की नलराज चौपई में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का उल्लेख हुआ है । यहां यह भी स्पष्ट किया गया हैं कि चार वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करते थे और किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाते—

"ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नर सुध, वरण चारि वसई अठाई ।
आप अपनी धरम करनी करइ, पर नइ पीड़ा करता डरई ॥"

जाति प्रथा—

वैदिक युग से विकसित हुई यही वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में विभिन्न जातियों में परिवर्तित हो गई । परिणामतः जनमानस में ऊंच-नीच, छूआछूत की भावनाएं भी पल्लवित हुई और छोटी-बड़ी जातियों का उद्भव हुआ । जैन कवि केशव की सदैयवत्स सावालिंगा चौपई वि.सं. 1693, समय सुन्दर की नलराज चौपाई में धोबी, ब्राह्मण, वैश्य, कुम्हार, कलावंत ढाढी, पुरोहित, कोली, कायस्थ, कावड़िया, लोहार, जोगी, काछी, दोसी, गांधी, तंबोली, चोर, जाट, धोबी, मोची, कंदोई आदि जातियों का उल्लेख मिलता है । इनकी उत्पत्ति के संदर्भ में इन रचनाओं में कहीं संकेत नहीं मिलते । हां, कुछेक जातियों के स्वभाव के विषय में अवश्य लिखा गया है—

"महाजन लोक धाएमति रा सुखी, चोर, जार, चुगलते दुखी
कंदोई, काठी, सोनार, कुम्हार, माली, मरदीया सुतार,
तड़सावंत, तंबोळी सार, नव मड नारु कच ठठार
घांची मोची बसइ अपार, करण च्यार नव नारु सार ॥

(समय सुन्दर-नलराज चौपाई)

आश्रम-व्यवस्था—

भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय का बड़ा महत्व है । राजस्थानी की इन जैन रचनाओं में भी आश्रम-व्यवस्था-संबंधी संदर्भ मिलते हैं । जैन कवि विनयचंद्र की 'उत्तम कुमार चौपाई' में उल्लेख है कि राजा मकरध्वज उत्तमकुमार को राज्य सौंप कर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लिया । इसी भांति कुशललाभ कृत भीमसेन हंसराज चौपई में भी अपने पुत्र को राज्य सौंप कर जैन गुरुओं से दीक्षा ग्रहण कर संन्यास आश्रम में प्रवेश का संदर्भ जैन समाज के अनुकूल मिलता है—

"आव्यउ मनि वैराग्य अपार, सहू अथिर जाणड संसार
राज हंस नह आथउराज कीधा बहु धर्म का काज ॥

समयसुन्दर की रचना मलयसुंदरी कथा में राजा महाधवल भी अपने पुत्र महाबल को राज्य सौंप कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करता है ।

पारिवारिक जीवन–

परिवार समाज की सार्वभौमिक संस्था है, जो नपे-तुले यौन संबंधों पर आधारित है।[1] राजस्थानी समाज में परिवार की ऐसी संस्था सदा से ही महत्वपूर्ण रही है। अतः राजस्थानी जैन-रचनाओं में तद्युगीन पारिवारिक जीवन की ओर महत्वपूर्ण संदर्भों का मिलना स्वाभाविक है। इन रचनाओं से स्पष्ट होता है कि आलोच्य काल में पुत्र परिवार की सम्पत्ति थी। पुत्र विहीन परिवार बिना दीपक के घर के समान माना जाता था। इसीलिये इन रचनाओं में पुत्र गोद लेने की ओर भी संकेत मिलता है।

संस्कार–

गर्भाधान, पुंसवनि, सीमान्तोनयन, विष्णुवलि, चोल, उपनयन, वेदव्रत, चतुष्टय, समावर्तन, केशान्त, विवाह एवं दाह आदि भारतीय समाज के प्रमुख 16 संस्कार है। ये दो दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण हैं—

1. मानव की शुद्धि एवं पवित्रता के लिये तथा
2. मानव की उत्सव प्रियता के लिये।

राजस्थानी जैन कवियों की कृतियों में गर्भाधान, जन्मोत्सव, नामकरण और विवाह-संस्कारों के प्रमुख रूप से संदर्भ मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक संदर्भ विवाह-संबंधी है। इसका मूल कारण विवाह द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश कहा जाना चाहिये। विवाह के द्वारा युगल देव कार्यों की सम्पन्नता और संतानोत्पति का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

राजस्थानी जैन रचनाओं में विवाह की आयु, वरचयन-पद्धति, समाज में प्रचलित विवाह के विभिन्न रूप, बारात एवं तत्सम्बन्धी रीति-रिवाजों के संदर्भ में भी समीचीन जानकारी मिलती है। इन रचनाओं के आधार पर आलोच्य कालीन समाज में विवाह बाल्यावस्था तथा युवावस्था दोनों में संभव थे। लखमसेन पद्मावती कथा 18 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में पद्मावती विवाह के अवसर पर 15 वर्ष की थी—

पनर वरस की बाली वेस, सूप अचल अनै उपम वेश।

आलोच्य काल में रचित जैन रचनाओं में यों तो वरचयन माता-पिता अथवा अन्य बड़ों की राय द्वारा ही किया जाता था, किन्तु कन्या भी अपने वर के चयन में

---

1. पी.वी.काने—धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 424

स्वतंत्र थी। पुण्यसार चौपाई वि.सं. 1673 (समयसुन्दर) में उल्लेख है कि जब रत्नावती के पिता बिना उसकी इच्छा जाने पुण्यसार से उसकी सगाई तय कर देते हैं तो वह अग्नि में जलने को तत्पर हो जाती है। वह तुरन्त अपने पिता को बुलाकर अपने इच्छित वर गुणसुंदर के साथ विवाह करवाने का निवेदन अपने पिता को करती हैं—

"सुणज्ये तात समाज, बोलइ रतनवती वचन।
पावक पडू ससि प्राण, पुण्यसार परणण वात ॥

× × ×

तेड़ी तात नइ तुरत कहइ इते, मन मान्यो मुझ खंताजी
परणावउ गुणसुंदर परमइ, खरी अछइ माणखंत
सेठइ जाण्यो भाव सुता को तुरत गयो तस पास जी।

शास्त्रों में वर्णित विवाह के आठों प्रकार में से इस काल की जैन रचनाओं में मुख्य रूप से प्राजापत्य, गांधर्व और राक्षस विवाहों के संदर्भ अधिक वर्णित हुए हैं। विवाह की स्वयंवर-—पद्धति में मुख्य रूप से नायक द्वारा शर्त की पूर्ति पद्धति ही इस युग में प्रचलित कही जा सकती है। हेमरत्न कृत पद्मनी चरित्र चौपई में पद्मिनी के भाई के साथ शतरंज की बाजी जीत जाने की शर्त को पूरा करने पर ही रतनसिंह का विवाह पद्मिनी के साथ होता है—

" रतनसेन सतरंजड रमइ, तिम तिम नारि तमई मनि गमई।
जु किम ई ए जीपइ दाण, तु मुझ वखत सही सुप्रमाण ॥

× × ×

कंठ ठवी को मला वरमाल, जय जय शब्द जगावई बाल।
शंघलदीप तणु हिव घणी, भगति करइ ते भूपति तणि ॥

परम्परित विवाहों में बारात का बड़ा महत्व है। यह सामाजिक संदर्भ मध्यकाल में काफी ऊभर कर आया है। कुशललाभ कृत भीमसेन हंसराज चौपाई में हंसराज की बारात से यह स्पष्ट होता हैं कि इस युग के समाज में बारात को अनेक साधनों से सजाया जाता था। चतुरंगिणी सेना, चारण, भाटों, याचकों और सम्बन्धित बड़े-बड़े राजाओं का लवाजमा बारात की शोभा माने जाते थे।

सुहागरात, लग्न, पाणिग्रहण, दहेज, मुंह-दिखाई, सीख (शिक्षा) देना आदि विवाह से सम्बन्धित प्रथाओं का भी चित्रण इस युग में रचित जैन-कृतियों में उपलब्ध होता है। लब्धोदय रचित पद्मिनी चरित्र चौपई वि.सं. 1680 में दहेज का

उल्लेख प्रस्तुत हैं—

दासी हे सखि दासी हे दोय हजार,
रुपे है ससि रूपे है रनि रम्भावणीजी ।
हाथी हे सखि हाथी हे हेवर हेम,
परिघल हे पहिरावणी जी ॥14 ॥ पृ. 13

आलोच्य काल की जैन रचनाओं से स्पष्ट होता है कि इस काल में अन्तर्जातीय विवाहों एवं बहुपत्नी विवाह का भी प्रचलन था । (नलराज चौपई, पुष्पसेन पद्मावती री बात, माधवानल कामकंदला चौपई)

वि.सं. 1600-1900 तक रचित जैन रचनाओं में नारी की स्थिति के संदर्भ में भी जानकारी मिलती है । इस युग की जैन रचनाओं में स्वकीया प्रेम की प्रधानता है । भीमसेन हंसराज चौपई (वि.सं. 1643) में उल्लेख है कि जब मदन मंजरी अपने विवाह का निर्णय कर लेती है तो वह मात्र अपने प्रिय के प्रति ही समर्पित हो जाती है । पिता की आज्ञा का वह उल्लंघन कर त्रिपुरा देवी के मन्दिर को जाती है और वहाँ वह अपने इच्छित वर भीमसेन से विवाह कर लेती है ।[1]

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इस युग में नारी पूर्णतः स्वंतत्र थी । प्रायः उस पर पुरुष की मनमानी ही चलती थी । वह मात्र भोग्या समझी जाती थी । थोड़ी सी शंका पर पुरुष नारी के साथ दुर्व्यवहार करने लगता था । न चाहते हुए भी उसे पर पुरुष की शैया सजानी पड़ती थी । जटमल कृत "गौरा बादल चौपई" में पद्मिनी का रत्नसेन के प्रति यह निवेदन उस सामाजिक इतिहास संदर्भ की ओर संकेत करता है—

"कह रानी पद्मावती, रतनसेन राजान ।
नारि न दीजै आपणी, तजिये, पींव पिरान ॥
तजियै पीव पिरांन, और कूं नारि न दीजै,
काल न छूटै कोय, सीस दै जग जस लीजै ।
कलंकै लगावै आपकों, मो सत खोयै जान,
कह रानी पदमावती, रतनसेन राजान ॥82 ॥

"परदा प्रथा" इस युग की महत्वपूर्ण सामाजिक घटना है । आलोच्य काल में रचित जैन रचनाओं में वर्णित चित्रणों से स्पष्ट होता है कि इस युग की रानियाँ एवं

1. एल. डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रंथांक—ला.द. 1217 छंद—151-193

बड़े घराने की स्त्रियां परदें में ही रहती थी। अनजान पुरुष उनके अन्तःपुर तक नहीं पहुंच सकता था। इसीलिये बादशाह के लिये राघव चेतन पद्मिनी नारी की जाँच तेल में छाया देखकर करने का निवेदन करता है—

"राघव कहै नरिंद सुनि, गरमहल में न जाय,
छाया देखूँ तेल में, नारी देऊँ बताय ॥50 ॥

मध्ययुगीन जैन रचनाओं का एक विषय वेश्या-गमन भी रहा है। प्रायः जैन मुनियों द्वारा रचित स्थूलिभद्र सम्बन्धी कथा कोशा नामक वेश्या से ही सम्बन्धित है। उसके द्वारा जैन कवियों ने प्रेम में निहित शील और जैन धर्म में शम भाव की स्थापना की हैं। इस कथा से यह भी स्पष्ट होता हैं कि आलोच्य काल में वेश्या वृत्ति प्रचलित थी, किन्तु उनका भी शील के प्रति आग्रह था। यही कारण हैं कि श्रावक द्वारा काम-निवेदन करने पर कोशा नामक वेश्या उसे नेपाल से रत्नजड़ित कम्बल लाने को कहती है।[1]

समाज का आधार फलक उसमें प्रचलित रीति-रिवाज, आचार-विचार होते हैं। इन्हीं रुढ़ियों के द्वारा संस्कृति अपना स्वरूप निर्धारित करती है। उस युग की जैन रचनाओं में विभिन्न जातियों, समुदायों की ऐसी अनेक परम्पराओं के प्रति संकेत चित्रित हैं। इस रूप में आज के अनेक विश्वास एवं रुढ़ियाँ तत्कालीन समाज में भी प्रचलित थी। इन जैन कवियों की रचनाओं में जो संकट आये हैं, उन्हें वे पूर्व जन्म के कर्मों का फल ही मानते हैं। कुशललाभ की ढोला मारवणी चौपाई, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन एवं केशव कृत सदयवत्स सावलिंगा चौपाई रचनाएँ इसके प्रमाण हैं।

स्त्री का अधिक दिनों तक पीहर में रहना, पुरुष का अधिक दिनों तक ससुराल में रहना, लड़की का अधिक दूर विवाह न करना, वीरों और प्रियजन पर 'लूण' उतारने की प्रथाओं के प्रति जटमल कृत गौरा बादल चौपई, केशव कृत सदयवत्स सावलिंगा चौपई, रत्नप्रभ कृत रणसिंध कुमार चौपई, कुशललाभ की रचनाओं में उल्लेख है। इसी प्रकार अनेक अंधविश्वासों यथा-मंत्र-तंत्र, जात देने से संतानोत्पति का होना, छींक, भूत-प्रेत, दक्षिणांग से पक्षियो का बोलना, वृक्ष-पूजन, नर-बलि आदि पर अटूट श्रद्धा थी।

समाज के प्रमुख अंग स्त्री-पुरुषों के वस्त्राभूषणों, श्रृंगार-प्रसाधनों एवं रहन-सहन

---

1. कुशललाभः स्थूलिभद्र छतीसी, सप्त सिंधु, मार्च 1978 (पृ. 13-22, 26) लेखक द्वारा संपादित)

के चित्र भी इस युग की जैन रचनाओं में प्रस्तुत हुए हैं। ये वर्णन उस युग की सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति का भी अहसास करवाते हैं। इनमें वर्णित वस्त्राभूषणों में मुख्य रूप से हीरचीर, सौवन पट्ट, घाघरा, पट्टकूल, दिखणी चीर, कंचुकी, मोजडी, झूल, बहिरखा, सीसफूल, नवसरहार, कंकण, नेउर, करधनी, चूड़ियाँ हैं—

"नाक जिसी दीवानी सिषा, बाहे रतन जड़ित बहिरखा,
सीसफूल, सोवन, राखड़ी, कंचन मयघड़ी रतनेजड़ी,
गले अेकावल नवसरहार, कंकण नेउर झंकार,
खलके चूड़ी सोवन तणी, क्षुद्र घंटिका सोहामणी,
केहर सिंध जिसी करि लंक, रतन जड़ित करि मेखलांक ॥

श्रृंगार-प्रसाधनों का चित्रण—

अंगे चंदन केसरी खोल, अधर दसन रंजित तंबोळि।
अंजन सु अंजी आंखड़ी, जाणे विकसी कमल पांखड़ी ॥[1]

जीवन की स्वस्थता के लिये आमोद-प्रमोद अनिवार्य हैं। आलोच्य काल में रचित जैन साहित्य इस ओर भी संकेत करता है। सावन-फागुन अथवा राजा या समाज द्वारा उपयुक्त अवसरों पर अनेक सार्वजनिक उत्सवों का आयोजन किया जाता था। मनोरंजन के लिये चित्रकला गायन, नृत्य, काव्य आदि कलाओं का भी प्रचलन था। रिख साधु की रचना "कमलावती चौपई" में कलाओं द्वारा मनोरंजन का चित्रण प्रस्तुत है—

मांड़यों नाटक तता थेई, नाचती हो लाल सझे सोल सिणगार।
कोयल सरसा कंठ, गावै गीत गाजता हो लाल,
सघड़ सारंगी राग, मेल गीत गावती हो बाल।
घूंघट ना धमकार, ठमक ठमक पग ठवे हो लाल,
फिर फिर फूंदी लेय, मधुर सारे लबे ही लाल ॥[2]

इन मनोरंजनों में दुर्व्यसन भी प्रचलित थे। किन्तु उन्हें समाज में अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता था। जैनियों द्वारा इनसे सम्बन्धित अनेक रचनाएं हैं। "तम्बाकू

1. कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला-आनंदकाव्य महोदधि, मौक्तिक-7, पृ. 46-47 चौ. 189-194
2. श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर अजमेर की प्रति

सज्झाय" में तम्बाकू के अवगुणों का चित्रण हुआ है। जुआ का खेल भी प्रचलित था। इस खेल में कई बार हार जाने पर मस्तक भी काट लिया जाता था, अतः इस पर भी रोक रखी जाती थी—

मात पिता मन रंग, कुमर न वरज्यु तिहां कीयइ।
सदा फिरइ ते सांती, जुआरया मोहे जुड्यअ ॥[1]

शिक्षा—

सदयवत्स सावलिंगा चौपई (केशव) उत्तमकुमार चौपई, पुण्यसार तेजसार रास, अगड़दत्त रास, स्थूलिभद्र छतीसी आदि रचनाओं से तत्कालीन समाज में शिक्षा के स्वरूप का परिचय भी मिलता है। विद्याविलासरास, अगड़दत्त रास रचनाओं में गुरुकुलों में सहशिक्षा का उल्लेख हुआ है। बड़ी आयु के छात्र-छात्रा भी अपनी प्रतिभा दिखाकर गुरुकुलों अथवा पोशालों (जैन पाठशालाओं) में प्रवेश पा सकते थे, अन्यथा पोशालों में प्रवेश की आयु 8 वर्ष तक ही थी—

आठ वरस नु अनुक्रमउरे, पुत्र हुओ परिधान।
माता-पिता मन रंग सु, मुक्यउ पछिना बहु मान रे ॥[2]

यहाँ छात्र-छात्राओं के पाठ्य-विषयों की चर्चा भी हुई है। प्राथमिक अध्ययन के उपरान्त अध्ययन के मुख्य विषय राजनीति, व्याकरण, अमरकोश, पिंगल, लीलावती गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, रसायन आदि थे—

गुटी, पुटी, जटी, तंत, जंत मंत, अंत, पत
इलवसी कार एक घुटे धड़घात है।[3]

छात्राओं को ललित कलाएँ विशेष रूप से पढ़ाई जाती थी।

धर्म-विचार—

जैसा कि कहा जा चुका है जैन कवियों का मुख्य लक्ष्य अपने धर्म का प्रचार करना था। किन्तु इनके नायक क्षत्रिय थे, अतः उन प्रसंगों में पौराणिक धार्मिक विश्वासो का भी चित्रण हो गया है। इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में

---

1. समयसुन्दर—पुण्यसार चौपई, पृ. 120
2. पुण्यसार चौ. समयसुन्दर, पृ. 125
3. विद्याविलास चौपई

गंगा-जमुना, गोमती, पुष्कर, क्षिप्रा आदि तीर्थों के प्रति जन समाज की आस्था थी। देवी, शिव, पार्वती का व्रत करके इष्ट फल की प्राप्ति की जाती थी। शत्रुंजय यात्रा, बाहुबलि यात्रा, गिरनार यात्रा, समेत शिखर-यात्रा करना जैन धर्मावलम्बी श्रेष्ठ मानते थे। इनकी यात्रा के लिये वे संघों में जाते थे।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वि.सं. 1600 से 1900 तक रचित जैन साहित्य तत्कालीन सामाजिक इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण आधार स्रोत हैं। समाज की प्रत्येक गति-विधि का हाल इन रचनाओं में किसी न किसी प्रसंग में मिलता है। अधिकांश वर्णन उच्च मध्य वर्ग से सम्बन्धित ही है। इससे यह भी निष्कर्ष दिया जा सकता है कि तब गरीबी नहीं के बराबर ही रही होगी। यात्रा, भवनादि के जो चित्रण हुए हैं—इनकी चमक-दमक एवं व्यय से यह एक सम्पन्न समाज ही सिद्ध होता है।

◆◆◆

3

राजस्थानी जैन-काव्य में संगीत-तत्त्व

जैन धर्म भारत के प्रचारात्मक धर्मों में से एक है। इसलिये इस धर्म का साहित्य भी प्रचारात्मक प्रवृत्तियों को लिए हुए हैं। जैनियों का यह प्रचार व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक है। जैनकवियों ने अपने धर्म को जन-जन तक पहुँचाने के लिये उसकी सहजता का सर्वाधिक ध्यान रखा। इसीलिये जन-साहित्य गीतात्मक प्रवृत्ति को लिए हुए मिलता है। जैन-कवियों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों को जन रुचि के अनुकूल बनाने के लिए तत्कालीन प्रचलित शास्त्रीय एवं लौकिक बन्धों को ग्रहण किया। साथ ही जिस प्रान्त में जो प्राकृत या अपभ्रंश का स्वरूप प्रचलित था, उन्हीं भाषाओं में इन कवियों ने इस साहित्य का सृजन किया। जैन-कवियों ने जिन लौकिक बंधों एवं शास्त्रीय रागों का उपयोग किया, वे इस प्रकार हैं—

(क) **शास्त्रीय रागें—**श्री (धवल), देशाख, छाया, राजवलभ, धन्याश्री, सूहव, आसावरी, *सामेरी, मल्हार, षंभायती, सोरठी, गौड़ी, धन्याश्री, गोडा बालूछानी, जयंतसिरी,* सारंग, धन्यासिरी-मारुणी, आस्यासिंधूड़ो, गूरी, धवल-धन्याश्री मेवाड़उ, रामगिरी, तोड़ी, काकी, वैराड़ी।

(ख) **लौकिक-बंध—**(अ) छंद—घत, धत्ता, छप्पय, कवित्त, वस्तुक, उल्लाला, सोरठा आदि।

(आ) ढालें—उलालानी, इक्बीस ढालियानी, गौड़ी, सुणि-सुणि जंबूनी, जतनी, भावनारी, चंदलियानी, पाहली, बिणजारानी, बड़खानी, पुरन्दरनी चौपई नी, नायकारी, पोपट पंखियानी, वदली री, रसोयानी, देशी हमीरानी, रसोयानी देशी, साहिलानी, फागनी।

जैन कवियों की गीतात्मक रचनाओं में उक्त रागों के नामोल्लेख से यह सिद्ध

होता है कि इन कवियों को संगीतशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उक्त रागों में से अनेक रागें आज भी अपने पर्याय नामों के साथ प्रचलित हैं। यद्यपि वैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्ति से तत्कालीन रागों के लक्षणों में आज आमूल-चूल परिवर्तन हो चुका है, फिर भी कुछ लक्षण इनके अनुकूल मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ, राग आसावरी को शास्त्रीय दृष्टि से प्रातः कालीन राग कहा गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता होती है।[1] सत्रहवीं शताब्दी के वाचक कुशललाभ ने इसी राग में प्रातः काल का वर्णन करते हुए श्री पूज्यवाहण जी की स्तुति की है—

पहिलो प्रणमुं प्रथम जिण, आदिनाथ अरिहंत।
नामि नरेश्वर कुल तिलक, आपह सुख अनंत॥

आ भवसागर सारिख, सुख दुख अंत न पार।
सद्गुरु वाहण नी परइ, उतारइ भव पार॥[2]

रामगिरी (रामग्री) राग का वर्तमान नाम रामकली अथवा रामकरी है। इसे प्रातः कालीन संधि प्रकाश राग माना जाता है। इसमें भक्ति निर्वेद की भावना के साथ वियोग शृंगार का वर्णन भी किया जाता है।[3] जैन साहित्य में इस राग में बंधे गीत लक्षणानुकूल हैं। जहां कवि कुशललाभ अपनी भक्त्यात्मक गीति रचना "पूज्यवाहण गीतम्" में इस राग में भक्ति और निर्वेद के उपदेश का गान कर रहे हैं[4] वहीं कवि धर्मकीर्ति वियोग के स्वर इस रूप में प्रस्तुत करते हैं—

श्यणी सोहद चंद सू, दिनकर सोहइ दीस।
तिम "वछा" बोहिथ कुलइ, पूरउ मनह जगीस॥[5]

गूडमल्हार गौड़ मल्हार का अपभ्रंश है। इसे कुछ संगीतशास्त्री ऋतुराग भी कहते हैं, क्योंकि इसे वर्षा ऋतु में गाया जाता है तथा वर्षा का ही इसमें शृंगार वर्णन

---

1. लक्ष्मीनारायण गर्ग; संगीत-विशारद, पृ. 256
2. सं. भंवरलाल अगरचन्द नाहटा, ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रह, पृष्ठ 114
3. आचार्य उत्तम राय शुक्ल, भारतीय संगीत संस्करण 1958 ई.
4. धर्म मारग उपदेशता, करता करता विषय विहार रे।
   आया जी नगर त्रंबावती, श्री संघ हर्ष अपार रे॥35॥
   सूफ ते सद्दहणा खरी, सुगुरु सेवा सिकलात रे।
   पोत सुरासुर पोसहा, मकमल प्रवचन मात रे॥42॥
5. विविध पूजा-संग्रह, पृ. 211

होता है। प्रस्तुत राग का एक स्थायी और अन्तरा प्रस्तुत हैं जिसमें दार्शनिक दृष्टि से नायिका केलिरत वर्णित की गई हैं—

आव्यो मास असाढ़ झबूके दामिनी रे।
जीवई जोवई प्रीयड़ा वाट सकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सांदिकि प्रीउ-प्रीउ उचरइ रे।
वरसइ घणा बरसात सजन सरवरइ तरइ रे॥

प्रवचन वचन विस्तार अरथ तरवर धण रे।
कोकिल कामिनी गीत गायइ श्री गुरु तणा रे॥
गाजर-गाजइ गगन गंभीर श्री पूज्य नीं देश ना रे।
भवियण मोर चकोर थापइ शुभ वासना रे॥

"श्रीराग" को सांयकालीन संधिप्रकरण राग कहा गया है जिसमें भक्ति एवं निर्वेद की अभिव्यक्ति की जाती है। जैन-कवि पहराज की यह स्तुति उक्त लक्षण संबद्ध राग श्री में बंधित हैं—

धन धन जिण (शासन) पातग नाशन, त्रिभुवन गरुअड़ गहगहाए।
जासु तणउ जसुवाउ गंगाजल, निरमल महियले महमहए॥

श्री वयरस्वामी गुरु अनुक्रमि चिहु दिसे, चंद्रकुल चउपट जाणिइए।
गच्छ चउरासीय माहि अति गरुअड, खरतर गच्छ वक्खाणिइए॥[1]

खंभावनी और सोरठी रागों का प्रमुख रस शृंगार है। इनके वर्तमान नाम क्रमशः खंभावती और सोरठ है। जैन-कवियों का बाहुल्य प्रमुखतः गुजरात, राजस्थान एवं सौराष्ट्र प्रान्तों में अधिक रहा। अतः इन प्रदेशों में प्रचलित देशज रागों का इन कवियों ने खुलकर प्रयोग किया। सोरठ एवं खंभावती रागें ऐसी ही देशज रागे हैं। खंभावती राग का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

सगल नगर सिणगारियो रे आनंद अंग न गाय रे।
गोख ऊपर चढ़ी गोरड़ी रे, इणि गलि राजा आवइरे।
घर घर गुड़ी उछले रे, तोरण बांध्या बारो रे।
हाट पटंबर छाइया रे, भीड़ घणी दरबारो रे॥[2]

---

1. विविध पूजा संग्रह, पृ. 43
2. आनन्द काव्य महोदधि मौक्तिक 7, प्रत्येक बुद्ध चौपई, समय सुन्दर कृत, चौ.सं. 11-12

सामेरी (सावेरी), जयंतसिरी (जैतश्री), वैराड़ी रागें सांयकालीन रागे हैं। इनके अतिरिक्त गोड़ी, केदार गौड़ी-सिंधु आदि शृंगारिक रागों का भी जैन-कवियों ने अत्यधिक प्रयोग किया है। वस्तुतः ये रागें जैन काव्यों के लक्ष्यानुकूल रागे हैं। जैन-कथाकाव्यों का आरंभ शृंगार से होता है और अवसान शम से। शृंगार रस के माध्यम से जैन यति जीवन की निःसारता को सिद्ध करते हैं।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जैन कवियों ने लौकिक बंधों एवं ढालों का भी प्रयोग किया है। लौकिक बंधों में प्रमुख रूप से कड़वक, धत्ता, घात, काव्यबंध का प्रयोग अधिक हुआ है। अपभ्रंश छंदशास्त्रियों के मतानुसार ये सब एक ही बंध कड़वक या धत्ता के नामभेद हैं।[1] प्रत्येक कड़वक की समाप्ति पर धत्ता देने का नियम है। कड़वक में कुल आठ या 16 पंक्तियां होती है। जिनदत्त सूरि, कुशलधीर, कुशललाभ, जयलाभ, समयसुन्दर, हीरकलश, आदि कवियों में इस लौकिक बंध का प्रयोग देखा जा सकता है।

दोहा, सोरठा, कवित्त, छप्पय, उल्लाला आदि तद्‌युगीन प्रचलित शास्त्रीय छन्द हैं, जिन्हें गेयता की दृष्टि से इन कवियों ने ग्रहण किया।

लौकिक छंदों की भांति ही इन कवियों ने अपनी रचनाओं को प्रचार की दृष्टि से अधिक ग्राह्य बनाने के लिये उस युग में प्रचलित गाने की धुनों को भी ग्रहण किया। इन्हीं प्रचलित धुनों को ढाल अथवा तर्ज कहा जाता है। आज भी गीतों की यह प्रणाली प्रचलित हैं। कई फिल्मी गीतों की ढाल (तर्ज) पर अनेक लोककवि गीत लिखते मिलते हैं। घर की महिलाएं बनड़े-बनड़ी, जच्चा इत्यादि जोड़ती दिखायी देती हैं। आजकल की पैरॉडिया "ढाल" के समानान्तर ही कही जा सकती है।

जैन कवियों द्वारा ये ढालें अथवा तर्जे कुछ तो शास्त्रीय रागों पर लोक-धुनों से संबंधित हैं तो कुछ छंदों पर और कुछ उस समय में प्रचलित गीत, लोक-गीत, कथागीत अथवा समकालीन कवियों के गीतों को किसी पंक्ति विशेष पर गेयता की दृष्टि से जैन-काव्य में इन ढालों का विशेष महत्व है।

◆◆◆

---

1. देवेन्द्र कुमार जैन—अपभ्रंश भाषा और साहित्य, पृ. 108

4

राजस्थानी की जैन-प्रेमाख्यानक रचनाएं

"आख्यान" शब्द की व्युत्पत्ति ख्या धातु के साथ आ उपसर्ग के योग से मानी गई हैं-असमान्तात् ख्यानं"। इसी संदर्भ में आख्यान को उपाध्यान के निकट मानना चाहिये क्योंकि मुख्य वस्तु के अनुसंधान में अवान्तर वस्तु अथवा प्रसंग का जो महत्व होता है, उसी को नवीन रूप में अभिव्यक्त करना आख्यान का उद्देश्य होता है।[1] इसीलिये साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—"अस्मिन्नार्थे पुनः सर्गाः भवन्त्याख्यान संज्ञका"[2] अर्थात् महाकाव्य में आर्ष वाणी रूप में कही गई कथा ही आख्यान कहलाती है। यह कथन पद्य और गद्य दोनों में संभव है। इस पूर्व कथित (आख्यानं पूर्वावृत्तोक्ति) आख्यायान नामक विद्या में मात्र उत्पाद्य या काल्पनिक वस्तु ही न हो, इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

इसी आख्यान शब्द के साथ प्रेम शब्द जोड़ने से "प्रेमाख्यान" पद का निर्माण होता है। भारतीय साहित्य में इनकी अति प्राचीन परम्परा मिलती है। ऋग्वेद में उल्लिखित यम-यमी संवाद, उर्वशी-पुरुखा, सूर्यपुत्री तपती और संवरण के प्रणय-प्रसंगों में भारतीय प्रेमाख्यानों के सूत्र खोजे जा सकते हैं। महाभारत-पुराणों में भी विविध प्रेमाख्यानों का उल्लेख हुआ है। नलोपाख्यान, शकुन्तला-दुष्यन्त, अर्जुन-सुभद्रा, भीम-हिडिम्बा आदि महाभारत के गणनीय प्रेमाख्यान हैं। उषा-अनिरुद्ध के प्रेमाख्यान का विस्तृत वर्णन हरिवंशपुराण में विद्यमान हैं।

संस्कृत कथा साहित्य और काव्यों में प्रेमाख्यानों के विविध रूप दर्शनीय हैं।

---

1. प्रो. म.र. मजमूदार—गुजराती साहित्य ना स्वरुपो, आचार्य बुक डिपो, बडोदरा, पृ. 143, संस्करण 1954;
2. साहित्य दर्पण, 6/325

यहां विविध कथाओं को ले कवियों ने स्वतंत्र प्रेमाख्यान भी रचे, यथा—महाकवि भास कृत स्वप्नवासवदत्ता, सुबंधु कृत वासवदत्ता, बाण रचित कादम्बरी, कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, कुमारसंभव, मालविकाग्निमित्रम्, भवभूति कृत मालतीमाधव, हर्ष रचित रत्नावली नाटिका, नैषधीयम् महाकाव्य, त्रिविक्रम कृत नलचम्पू इत्यादि ।

संस्कृत साहित्य में वर्णित अवान्तर आख्यानों एवं संस्कृत कवियों के प्रभाव से यह परम्परा पालि, प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य में भी विकसित हुई । पालि भाषा में रचित बौद्ध जातकों में प्रेम कथाओं का अन्यतम रूप प्राप्त होते है । कट्ठहारिक जातक[1] के मूलकथा तन्तु महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से समता रखते हैं । इसी भांति अंडभूत जातक[2], असिलक्खण जातक[3], मद्दुपाणीजातक[4], आसंगजातक[5], दस एणक जातक[6], सुसंग्गाजातक[7], महापदुमजातक[8], भी पालिभाषा की उल्लेखनीय प्रेमाख्यानक रचनाएं कही जानी चाहिये ।

गुणाढ्य की वृहत्कथा, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामंजरी, सोमदेव रचित कथा सरित्सागर, जैन कवि हरिषेणकृत वृहत्कथा कोष आदि रचनाएं प्रेमाख्यानक रचनाओं के अक्षुण्ण भण्डार हैं । इन्हीं प्रेमाख्यानों में प्रयुक्त कथा-तन्तुओं, यथा-प्रेमी का फूलों की टोकरी में छिपाकर प्रेमिका के महलों में जाना, चौपड़ खेलना, नायिका के विवाह के लिए शर्त रखना, स्त्री की कामासक्ति, दक्षिण दिशा की ओर न जाना, मधुकूप आदि की घटनाओं से राजस्थानी जैन प्रेमाख्यान विकसित हुए हैं ।

जैन कवियों ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी अनेक प्रेमाख्यानकों की सर्जना इनमें शील माहात्मय की स्थापना हेतु नायक-नायिका के एकनिष्ठ प्रेम का निरूपण किया गया है । प्राकृत में हरिभद्र की समराइच्च कहा, उद्योतनसूरि कृत

---

1. जातक कथा (प्रथम खण्ड)—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 173-76
2. वही, पृ. 376
3. वही (दूसरा खण्ड)—वही, पृ. 64
4. वही (तृतीय खण्ड)-वही, पृ.49
5. वही, पृ. 47
6. वही (चतुर्थ खण्ड) वही, पृ. 187
7. वही, पृ. 187
8. वही, पृ. 387

कुवलयमाला, वासुदेव हिण्डी, जिनहर्षगणि विरचित रणयसेहरीकहा आदि तथा अपभ्रंश की धनपाल कृत भविसयतकहा, पुष्पदन्तकृत नयकुमार चरिउ, नयनंदी रचित सुदसण-चरिउ, लाखू की जिणदत्त चरिउ आदि चरिउसंज्ञक रचनाएं इस दृष्टि से प्राकृत एवं अपभ्रंश के उल्लेखनीय प्रेमाख्यान हैं।

यों तो इन रचनाओं का मुख्य लक्षण जैन सम्प्रदाय (धर्म) सम्बन्धी आचार संहिता की शिक्षा देना है किन्तु इन शिक्षाओं को अधिक उपादेय एवं लोकप्रिय बनाने के लिए इनका आरंभ शृंगारिक प्रवृत्ति से किया है और अन्त शान्त रस में। यही शैली साहित्य जगत् में जैन शैली नाम से जानी जाती है।

राजस्थानी में रचित जैन कवियों के प्रेमाख्यान भी इसी शैली में वर्णित है। साथ ही मूल आख्यान भी प्राकृत-अपभ्रंश से गृहीत है। इसके प्रमुख दो कारण सम्भव है—प्रथम, मरुगुर्जर संज्ञक भूभाग में तब वर्तमान राजस्थान का बहुत बड़ा भू भाग सम्मिलित था, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश एवं उनके विभिन्न रूप प्रचलित थे। द्वितीय अपभ्रंश के बाद ही उसके विभिन्न रूपों से भारत के विभिन्न भूभागों की देशज भाषाएं विकसित हुई। अतः अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी जैसी प्रान्तीय भाषा की साहित्यिक शैली को प्रभावित करना स्वाभाविक ही थी। इस प्रकार राजस्थानी के जैन प्रेमाख्यानों की कथ्य और शैली की दृष्टि से अपभ्रंश जैन प्रेमाख्यानों के निकट ही मानना चाहिये। इस आधार पर यह भी स्पष्ट है कि राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानों की परम्परा प्राचीन है। 13 वीं शताब्दी से तत्सम्बन्धी प्रसंगों का उल्लेख होता रहा है। इन सभी का परिचय देना स्थानाभाव के कारण कठिन है। अतः यहां हम उल्लेखनीय राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. सिरि थूळिभद्र फागु[1] –

अन्य प्राप्त प्रतियों में इसका नाम सिरि थूलिफाग भी मिलता है। फागु काव्य शैली की यह सर्वाधिक प्राचीन रचना मानी गई है।[2] इसका रचयिता जैनाचार्य जिनपद्मसूरि है। इन्हे वि.सं. 1390 में आचार्य पद प्राप्त हुआ तथा निर्वाण वि.सं. 1400 में। अतः इस रचना का निर्माण काल इन्हीं 10 वर्षों के मध्य मानना उचित होगा।

---

1. सं. चीमनलाल दलाल-प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, 1920 ई.
2. प्रो. म.र. मजमूदार-गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, आचार्य बुक डिपो, बडोदरा, पृ. 214

स्थूलिभद्र मगध देश की राजधानी पाटलीपुत्र (पाटन) के राजा नंद के मंत्री शकटार का पुत्र था। पाटन की राज गणिका कोशा से उसका प्रेम हो गया। वह उसके साथ बारह वर्षों तक रहा। इसी बीच राजा नंद की मृत्यु हो गई। मंत्री ने उसे राजपाट हेतु बुलाया किन्तु पश्चातापवश उसने राज-काज नहीं संभाला। वह चातुर्मास करने पुनः कोशा की रंगशाला में ही गया। कोशा ने उसके संयमव्रत को तोड़ने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु विफल रही। अन्त में कोशा ने भी अपने प्रियतम का अनुसरण कर वैराग्य धारण किया।

कवि ने अनेक उद्दीपनों के माध्यम से प्रेम प्रसंगों की अवतारणा की है। स्थूलिभद्र को ललचाने हेतु वह सोलह शृंगारों से परिपूर्ण होकर उसके समक्ष प्रस्तुत होती है।[1] किन्तु स्थूलिभद्र के संयम तप के समक्ष कोशा के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। महा बलवान कामदेव रतियुद्ध के प्रांगण में विजित हो जाता है और कवि अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है—

अई बलवंत सुमोहराउ, जिणि नाणि निधाडिउ।
झाण खडग्गिण मयण-सुभउ समरंगणि पाडिउ ॥

स्थूलिभद्र-सम्बन्धी यह आख्यान जैन आचार संहिता में अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। इस आख्यान को लेकर मध्यकाल में छोटी-बड़ी अनेक रचनाएं लिखी गई, जिनका उल्लेख हमने इसी संग्रह के एक अन्य लेख में किया है। स्थूलिभद्र सम्बन्धी कतिपय रचनाओं का प्रकाशन राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने भी किया है। कुशल लाभ कृत स्थूलिभद्र छत्तीसी का संपादन हमने सप्तसिंधु में प्रकाशित करवा दिया है।

2. नेमिनाथ फागु—

प्राकृतकाल से ही जैन धर्म के 22 वें तीर्थकर नेमिनाथ और राजुल का प्रेमाख्यान प्रचलित रहा है। यहां भी कवि मलधारी राजशेखर सूरि ने इसी प्रसंग को लेकर इसकी रचना वि.सं. 1405 में की। ऐसी मान्यता है कि यदुवंशी नेमिनाथ कृष्ण के

---

1. मयण खग्ग जिम लहलहंत जसु वेणी दंडो।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दंडो।
तुंग पयोहरे उल्लसई, सिंगार थपक्का।
कुसुम बाणि अमिय कुंभ, फिरि थापिणि मुक्का ।12
—गुजराती साहित्य नो स्वरूपो, पृ. 216-17

काका के पुत्र थे। उनका विवाह उग्रसेन की दुहिता राजमती राजुल के साथ हुआ था। जब वर यात्रा उग्रसेन के द्वार पर पहुंची तो वहां एक बकरे का वध बारातियों के सत्कार हेतु किया जा रहा था। इस घटना को सुनकर नेमिनाथ को अत्यधिक ग्लानि हुई। वे विवाह किए बिना ही वहां से चल पड़े। राजमती निरन्तर वर के घोड़े का मार्ग जोहने लगी। उसे वर द्वारा समाचार मिला कि वह लग्न की तुलना में तप को अधिक महत्व देता है।

जैन-साहित्य में यह आख्यान इतना लोकप्रिय रहा कि देलवाड़ा के मन्दिर के शिल्प में इन प्रसंगों का आलेखन किया गया। पाटण के मंदिर में भी नेमिनाथ की रथ यात्रा का चित्रण मिलता है। कवि ने इस रचना को फागु संज्ञक प्रमाणित करने हेतु वसन्त विहार का चित्रण किया है। आकार की दृष्टि से यह रचना काफी छोटी है। 27 छन्दों की इस प्रेमाख्यानक रचना में सात खण्ड है और प्रत्येक खण्ड की प्रथम कड़ी दूहे में है, दूसरी रोला में। अपने प्रियतम के दर्शनार्थ जिस शृंगार के साथ वह प्रतीक्षारत है, देखते बनता है—

> किम-किम राजल देवी तणउ सिणगार भणेवउ।
> चंपई-गोरी अई धोई अंगि चंदनु तणु लेव॥
> खुंपे भराविउ जाई कुसुमि कसतूरी सारी।
> सीमंतई सिंदुर रेह मोतीसरि सारि ॥3॥
>
> × × ×
>
> मरगद जादर कंचुयउ, कुड कुल्लह माला।
> करि कंकण मणिवलय, चूड, खड़ कापई बाला ॥20॥

3. पृथ्वीराज वाग्विलास—

आचार्य मेरुतुंग के शिष्य माणिक्यचंद्र सूरि की यह रचना[1] विषय एवं बंध दोनों ही दृष्टि से उल्लेखनीय है। कवि ने इसे वचनिका शैली में लिखा है। सौष्ठवयुक्त गद्य की दृष्टि से डा. शिवस्वरूप अचल ने इसकी भाषा को राजस्थानी का सबसे पहला साहित्यिक रूप माना है।[2]

---

1. कवि की अन्य रचनाएं हैं—मलयसुंदरी कथा (वि.1478), गुणवर्मा चरित्र, सतरभेदी पूजा कथा, चतुपूर्वी कथा, शुकराज कथा, संविभाग-कथा आदि।

1. राजस्थानी गद्य साहित्यः उद्भव और विकास, पृ. 54

माणिक्यचंद सूरि ने इसकी रचना वि.सं. 1478 में की। कृति में महाराष्ट्र के पहुगणपुर पट्टण के राजा पृथ्वीचंद्र तथा अयोध्या के राजा सोमदेव की पुत्री रत्नमंजरी का प्रणयाख्यान वर्णित है। स्वप्न में पृथ्वीचंद्र को देवी राजकुमारी को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। वह सेना सहित उसके स्वयंवर में वरमाला लेकर पहुंचता है किन्तु वैताल अपनी माया से रत्नमंजरी को ले जाता है। पर अन्त में पृथ्वीचंद देवी की सहायता से रत्नमंजरी को प्राप्त कर लेता है।

"पृथ्वीराज वाग्विलास" के द्वितीय विलास में रचना का काव्यत्व और जैन शैली के स्वरूप का सुंदर परिचय प्राप्त किया जा सकता है। प्रेमाख्यान को पल्लवित करने हेतु कवि ने यहां वसंत के सुन्दर वर्णन के साथ ही नायिका के सोलह शृंगार, वन-विहार, संयोग आदि के सुंदर चित्र खींचे हैं।[1] सात द्वीप, सप्तक्षेत्र, सप्तनद, षट्-पर्वत, बत्तीस सहस्र देश नगर, राजसभा, वन, सेना आदि जैन कथानक रुढ़ियों का भी सुंदर वर्णन हुआ है। भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से यह एक बेजोड़ रचना कही जा सकती है। प्रो. मजमूदार ने इसे नाम के आधार पर चौहानवंशीय प्रसिद्ध पृथ्वीराज से सम्बद्ध रचना मानने का संकेत दिया है[2] किन्तु कथा की दृष्टि से यह पूर्णतः जैन विषयक कृति है।

4. विद्याविलास पवाडउ—

यह जैन आख्यान साहित्य में प्रचलित राजा विद्याविलास का चरित्र है। हीराचंद सूरि ने इसकी रचना वि.सं. 1485 में की। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में इसकी वि.सं. 1676 में लिपित एक सचित्र प्रति "विद्याविलास सचित्र रास" नाम से संगृहीत है।[3] जैन आख्यान सम्बन्धी इस रचना का मूल आधार विनयचंद्र कृत संस्कृत की रचना मल्लिनाथ काव्य (रचना सं. 1285 के आस-पास) है। हीरानंद ने इसी रचना के द्वितीय सर्ग में वर्णित मूर्खचट्ट और विनयचट्ट की उपकथा को अपनी रचना का आधार बनाया है। कवि ने इस कथा को पवाडा रूप में प्रस्तुत किया है—

विद्या विलास नरिंद पवाडउ, हीयड़ा भितरि जांणि।
अंतराय विणु पुण्य करउ, तुम्हि भाव धणेरउ आंणि॥

---

1. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह-गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, अंक 13, पृ.102
2. गुजराती साहित्य नां स्वरूपो मध्यकालीन पद्यस्वरूप
3. ह.लि. ग्रंथांक 10827 (रा.प्रा.वि.प्र. जोधपुर संग्रह)

कवि हीरानंद ने सम्पूर्ण काव्य में राजकुमारी सोहग सुंदरी (सोभाग्य सुंदरी) एवं उज्जयनी के श्रेष्ठी पुत्र धनसागर की प्रेमकथा द्वारा तप के महत्व को प्रतिपादित किया है। नायिका के प्रेम की तड़पन[1] को दृष्टि में रखते हुए प्रो. म.र. मजमूदार का कथन है, "विद्याविलास राजा पुरुष ने बदले तेमनो वात मां विद्याविलासिनो अेवी नायिका बनी जाय छे ते खूब रमुज उत्पन्न करे छै।"[2]

रचना साहित्यिकता के साथ ही तद् युगीन समाज को भी पूर्णतः अभिव्यक्ति दे रही है। उस युग की कलात्मक प्रवृत्तियों, राजदरबारी संस्कृति, नारी मनोविज्ञान, व्यापार और वाणिज्य आदि के अनेक सुंदर दृश्य इसके महत्व को द्विगुणित करते हैं।

5. तेजसार-रास चौपाई—

राजस्थानी प्रेमाख्यान लेखकों में जैन कवि कुशललाभ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कुशललाभ ने जैन एवं जैनेतर विषयों पर प्रेमाख्यानक रचनाओं का निर्माण किया। माधवानल कामकंदला चौपई और ढोला-मारवणी चौपई कवि की जैनेतर विषयक प्रेमाख्यानक रचनाएं हैं। कुशललाभ ने अपने जीवनकाल में जैनाख्यानों को लेकर निम्नलिखित प्रेमाख्यानों का सृजन किया—

1. जिनपालित जिन रक्षित संधि गाथा (वि.सं.1621)
2. तेजसार रास चौपई (वि.सं.1624)
3. अगड़दत्तरास (वि.सं.1625)
4. भीमसेन हंसराज चौपई (वि.सं. 1643)
5. स्थूलिभद्र छत्तीसी एवं
6. गुणवती सुंदरी चौपई।[3]

जैन-श्रमण-संस्कृति में मुनि तेजसार एक काल्पनिक और जादुई कथानक पर

---

1. निसि भरी सोहग सुंदरी रे, जोइ वालंभ वाट;
   नींद्र न आवई नयण ले रे, हिअउई खरउ उचाट॥
2. गुजराती साहित्य ना स्वरूपो-मध्यकालीन पद्य स्वरूप, पृ. 126
3. इस रचना का कुछ सूचियों में 'गुणसुंदरी चउपई' नाम मिलता है। डा. कस्तूरचंद कासलीवाल द्वारा निर्मित सूची में 'कनक सुंदरी चउपई' नाम से वर्णित है। किन्तु यह कुशललाभ की संदिग्ध रचना है।

आधृत चर्चित चरित्र है, किन्तु उनके श्रमण संस्कारों पर बहुत कम कवियों ने अपनी लेखनी चलाई। इसीलिये कुशललाभ कृत तेजसार रास चौपई का महत्व स्वतः बढ़ जाता है। आलोच्य रचना में कवि कुशललाभ ने मुनि तेजसार के बाहुबल और प्रेम-क्रीड़ाओं की कथा कही है। तेजसार के जन्म एवं उनके पूर्वजन्म के वृत्तान्त द्वारा कवि ने जैन-समाज में दीप पूजन के महात्म्य को भी स्पष्ट किया है। कुशललाभ ने अनेक घात-प्रतिघात पूर्ण घटनाओं के माध्यम से तेजसार के श्रावक रूप की प्रतिष्ठा की है। जैन आचार संहित के आधार पर तेजसार की प्रणय-कथाओं से उसके बाहुबल को पुष्ट करते हुए जैन धर्म में दीक्षा के महत्व को भी कवि ने अति सौष्ठव के साथ प्रस्तुत किया है।

6. सुरसुन्दरी रास–

स्थूलिभद्र की प्रेम-कथा के समान ही अनेक जैन लेखकों ने सुरसुंदरी और अमरकुमार के प्रचलित प्रेमाख्यान को भी विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। ऐसी ही रचनाएं हैं नयसुन्दर विरचित सुरसुंदरी रास (वि.सं.1646)[1] एवं मुनि धर्मवर्धन कृत 'अमर कुंवर सुरसुंदरी चौपाई (वि.सं.1736) ।[2] आलोच्य रचना सुरसुंदरी रास में कवि नयसुंदर ने श्रेष्ठी पुत्र अमर कुमार और राजकुमारी सुरसुन्दरी की प्रेमकथा को बड़े ही रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। दोनों एक ही पाठशाला में विद्यारत हैं। किसी दिन स्त्री-पुरुष के अधिकारों के वाद-विवाद के कारण दोनों में अनबन हो जाती है। किन्तु गुणों की दृष्टि में रखते हुए राजा अपनी पुत्री सुरसुन्दरी का विवाह अमर कुमार के साथ कर देता है। सहज गृहस्थ जीवन भोगते हुए ही अचानक अमरकुमार को अपना देश छोड़ सिंहलद्वीप की ओर जाना पड़ता है। इस संकट के समय सुर-सुंदरी भी उसी के साथ चली जाती है।

मार्ग में पीने के पानी को प्राप्त करने को जब अमर कुमार बढ़ता है, तभी उसे सुरसुंदरी द्वारा बचपन में किए अपमान का स्मरण हुआ। वह प्रतिशोध लेने के लिये सुरसुंदरी को वहीं अकेला सोये हुए छोड़ गया। नींद टूटने पर विकल हुई शीलव्रत की रक्षा करती हुई वह पुरुष वेश में चम्पावती के राजा के पास पहुंची। वहां वह बीमार राजा को स्वस्थ करके उससे आधा राज्य प्राप्त करती है। तभी अमरकुमार भी वहा पहुंच जाता है। दोनों पुनः मिल जाते हैं।

---

1. जैन श्वेताम्बर मन्दिर, अजमेर में सुरक्षित प्रति
2. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह.ग्रं. 27380

इस प्रकार इस रचना का अन्त सुखान्त है। अन्य जैन-प्रेमाख्यानों के समान निजन्धरी अन्तर्कथाओं का भी प्रयोग कम हुआ है। पर बर्तमान की ज्वलन्त समस्या स्त्री-पुरुषों की समानता के प्रश्न से भी अवगत कराती है। यही साहित्य का चिरन्तन सत्य है। अतः सोच की दृष्टि से इस प्रेमाख्यान का महत्व है। इसी समस्या का उद्‌घाटन महामहोपाध्याय समयसुन्दर की प्रेमाख्यानक कृति पुण्यसार चौपई (वि.सं.1673)[1] में भी हुआ है।

7. सिंहल सुत चौपई—

मध्यकालीन राजस्थानी जैन साहित्य-मण्डल में महामहोपाध्याय समयसुन्दर का भी उल्लेखनीय स्थान रहा है। कुशललाभ की भांति ही समयसुंदर ने भी जैन एवं जैनेतर चरित्रों से सम्बन्धित प्रेमाख्यान लिखे। मृगावती आख्यान सूफी कवियों की प्रमुख विषयवस्तु रही है किन्तु कवि ने इसी आख्यान को जैन शैली में प्रस्तुत कर और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। राजा सातनीक की मृत्यु के उपरान्त मृगावती का वैराग्य धारण करना एवं उससे प्रेरित हो चण्डप्रद्योत द्वारा संयमव्रत धारण करना इस कथा में कवि समयसुंदर की मौलिकता का प्रमाण है।[2]

आलोच्य रचना "सिंहलसुत चौपई" का सृजन समयसुंदर ने वि.सं. 1672 में मेड़ता में किया। यह ग्यारह ढालों में रचित एक सरस प्रेमाख्यानक रचना है जिसमें कवि ने सिंहलद्वीप के राजकुमार सिंहलकुमार और धनवती की प्रेम कथा का निरुपण किया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

सिंहलद्वीप का रूपवान और वीर राजकुमार सिंहल वसंत ऋतु में भ्रमण के लिये निकला तो उसने जलक्रीड़ा निमित्त आई नगर-सेठ की कन्या धनवती को हाथी के चंगुल में देखा। अपनी बहादुरी से उसने धनवती को हाथी से मुक्त किया। दोनों में प्रेम हो गया और विवाह कर लिया। प्रस्थान करते समय राजकुमार समुद्र की उत्ताल तरंगों में गुम गया और धनवंती प्रियमेलक नामक तीर्थ पर पहुंच गई। वह अपने प्रिय सिंहलसिंह के मिलन हेतु मौन तप में लीन हो गई। उधर सिंहलसिंह रतनवती नगरी में पहुंचा तो राजकुमारी रतनवती को सर्प के विष से मुक्त कर देने पर उसके पिता रत्नप्रभ ने उसका विवाह सिंहलसुत के साथ कर दिया।

---

1. सं. भंवरलाल नाहटा—समयसुंदर रास पंचक
2. (क) सं. भंवरलाल नाहटा—समयसुंदर रास पंचक
   (ख) रा. प्रा. वि.प्र. जोधपुर, ह. ग्रं.

राजकुमारी रत्नवती के साथ उसने अपने पुरोहित रुद्रदत्त को भी भेजा। मार्ग में वह उस पर मोहित हो गया और छल से उसे समुद्र में गिरा दिया। वह भी उत्ताल तरंगों से बचकर प्रियमेलकद्वीप पहुंच गई और धनवती के पास बैठकर मौन तपस्या करने लगी।

राजकुमार सिंहलसिंह भी उत्ताल तरंगों से बचकर एक तापस के पास रहने लगा। वहीं तापस कन्या रुपमती उस पर मुग्ध हो गई। तापस ने उसका विवाह सिंहलसुत के साथ कर दिया। करमेक ने अनेक जादुई विधाए देकर विदा किया। दोनों प्रियमेलक द्वीप पहुंचे। वहां सिंहलसुत को एक सर्प ने डस लिया। वह कुरुप हो गया। रूपमती भी उसे पहचान न सकी और वह भी धनवती के समीप मौन व्रत लेकर बैठ गई।

तीनों के मौनव्रत की चर्चा होने लगी। एक दिन तीनों ने ही अपने मौनव्रत की कहानी कहकर अपना मौन तोड़ दिया। उधर देवयोग से राजकुमार को अपना वास्तविक रूप मिल गया। अपने प्रिय को प्राप्त कर तीनों स्त्रियां अति प्रसन्न हुई। कुसुमपुर के राजा को भी जब सिंहलसुत का परिचय मिला तो उसने भी अपनी पुत्री का उनके साथ विवाह कर दिया। राजकुमार सिंहलसिंह अपनी चारों पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक रहने लगा।

8. लीलावती चौपई–

गोरा-बादल पद्मिनी चरित्र चौपई के रचयिता हेमरतन सूरि की यह अन्य महत्वपूर्ण रचना है। हेमरत्न सूरि वाचक पद्मराज के शिष्य थे और प्राप्त रचनाओं के आधार पर उनका रचनाकाल वि.सं. 1616-1673 तक माना जा सकता है। आलोच्य कृति लीलावती चौपई का रचना काल वि.सं. 1673 है। कवि ने इसकी रचना पाली नगर में रह कर की।[1] पाटन नगर के धना सेठ की पत्नी धनवंती की पुत्री लीलावती और कोशांबी के सागर सेठ के पुत्र श्रीराज के एकनिष्ठ प्रेम की कहानी ही इस रचना की विषय वस्तु है। कथा का अन्त हेमरत्न ने श्रीराज और लीलावती के पूर्व भव के वृतांत के साथ किया है। शील-धर्म की स्थापना करने वाली इस कथा को कवि ने दोहा-चौपाई के कड़वकों में बांधा है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक महती रचना सिद्ध होती है।

---

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह.ग्रं.3500 (पुष्पिका)

9. प्रेमविलास प्रेमलता—

लाहौर निवासी श्रावक जटमल नाहर की सात रचनाओं का उल्लेख मिलता है ।[1] इनमें से एक महत्वपूर्ण रचना "प्रेमविलास प्रेमलता" प्रेमाख्यान है । रचना की पुष्पिका के अनुसार कवि ने इसका निर्माण जलालपुर (वर्तमान पाकिस्तान) में वि.सं. 1693 की भाद्रपद शुक्ला 4 रविवार को किया । रचना में योतनपुर के राजा प्रेम विजय की कन्या प्रेमलता और मंत्री मदन विलास के पुत्र प्रेमविलास के प्रेम की कथा कही गई है । प्रेमलता और प्रेमविलास दोनों जब एक ही पाठशाला में पढ़ते थे, तभी उनमें प्रेम पल्लवित हो गया । अपने पिता द्वारा निश्चित विवाह तिथि से पूर्व अमावस्या को प्रेमलता ने रात्रि को महाकाली मंदिर में प्रेमविलास के साथ गंधर्व विवाह कर भागने की योजना बनाई । योगिनी द्वारा पूर्व में सीखी गई जादुई विद्या का प्रयोग कर प्रेमलता अपने प्रेमी प्रेम विलास के साथ उड़कर रतनपुर पहुंची । वहां का राजा निःसंतान ही मर गया था । अतः देवदत्त हाथी द्वारा "मंगल कलश" प्रेमविलास पर उंडेल दिये जाने पर नगरवासियों ने उसे वहां का राजा बना दिया । दोनों बड़े आनन्द के साथ रहने लगे । इस प्रकार कथा में अलौकिक कथा प्रसंगों के होते हुए भी यह रचना अन्य जैन रचनाओं की तुलना में कम कथात्मक जटिलता लिए हुए है । कवि के पंजाब प्रवासी होने से कृति पर पंजाबी भाषा का प्रभाव भी लक्षित होता है ।

10. बछराज चौपई—

आलोच्य रचना की कथा का आधार मध्यकालीन जनप्रिय लोक आख्यान बच्छराज से सम्बद्ध है । जैन कवि विनयलाभ ने इस कथा को चौबीस ढालों और चार खण्डों में निरुपित किया है । कवि ने इसकी रचना वि.सं. 1737 की पौष कृष्णा द्वितीया, सोमवार को मुलतान नगर में की ।[2] कवि ने अद्‌भुत और शृंगार रस के माध्यम से शील की स्थापना की है । क्षित प्रतिष्ठ नगर के राजा वीरसेन की पटरानी से देवराज और दूसरी रानी से बच्छराज का जन्म हुआ । वीरसेन के स्वर्गस्थ होने

---

1. सं. भंवरलाल नाहटा—पद्मिनी चरित्र चौपई, सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 38-39, प्रथम संस्करण

2. संवत् सत्रै सैतीसे, पोस मास वदि बीज ।
तिण दिन कीधी चौपई, सोमवार तीय हीज ॥
श्री बछराज कुमार तणौ चिहं खंडे संबंध ।
कीधो श्री मुलतान में प्रसिद्ध गणै प्रबंध ॥
—श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर, अजमेर, ह.ग्रं. लिपिकाल सं. 1889, पत्र 62

पर, देवराज ने अपने सौतेले भाई बच्छराज को देश निकाला दे दिया और स्वयं राजा बन बैठा। बच्छराज अपनी माता धारणी के साथ उज्जयिनी पहुंचा और वहां लकड़हारे का काम करने लगा। अपने आचार्य द्वारा सीखी विद्याओं द्वारा उसने वहां के राजा को भी प्रसन्न कर लिया। राजा की इच्छानुसार उसने अनेक अद्भुत कार्य किए। यक्ष मंदिर से विद्याधरी की कंचुकी चुराकर रानी को भेंट दी। दत्तसेठ की पुत्री को मायावी पीड़ाओं से मुक्त कर उससे विवाह किया। विद्याधरियों के देश में जाकर स्वर्णचूला और रत्नचूला नामक विद्याधरियों से विवाह किया।

एक दिन राजा इन विद्याधरियों को देखकर उन पर मोहित हो गया। उन्हें प्राप्त करने के लिए उसने बच्छराज को अपने मार्ग से हटाना चाहा। अतः नित्य नई असंभाव्य वस्तुओं की मांग करने लगा। किंतु बच्छराज अपनी कलाओं द्वारा उसे तुष्ट कर देता। अन्त में राजा अपनी दुष्टता पर लज्जित हुआ और उसने अपनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया। उधर देवराज के दुष्ट कार्यों से तंग आकर क्षित प्रतिष्ठ नगर की जनता ने बच्छराज को आकर राज्य संभालने का निमंत्रण दिया। बच्छराज ने जन-सहयोग से देवराज को पराजित कर अपना राज्य संभाला। यहीं कवि ने बच्छराज के पूर्व भवों का वर्णन किया है।

11. चन्द्रराज चरित्र—

"चन्द्रराज चरित्र" के रचयिता मुनि कीर्तिविजय के शिष्य जैन मुनि मोहन विजय हैं। इस प्रेमाख्यान के अतिरिक्त मोहन विजय द्वारा रचित अन्य महत्वपूर्ण प्रेमाख्यानक रचनाएं हैं मानतुंग मानवती चरित्र (लि.काल वि.सं. 1887) और रतनपाल रतनावली रास (वि.सं. 1732) है। आलोच्य रचना का निर्माण कवि ने राजनगर में चौमासा बिताते हुए वि.सं. 1782 (पौष शुक्ला पंचमी) को किया।[1] उपलब्ध हस्तलिखित प्रति के अनुसार उसकी कथा इस प्रकार है—

आभा नगरी का राजा वीरसेन एक दिन घोड़े पर बैठकर महावन में पहुंचा। वहां उसने एक योगी के चंगुल से राजकुमारी चंद्रावती को मुक्त करवाकर उससे विवाह किया। सौतिया डाह से अभिभूत हो पटरानी वीरमती ने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं कि ग्लानिवश उसने चंद्रराज को राज्य सौंपकर वैराग्य धारण कर लिया। वीरमती ने अब चंद्रसेन की रानी गुणावली को अपने जादुई विद्याओं से वशीभूत किया। वह उसे एक दिन पेड़ पर बिठाकर विमलपुरी के राजा की कन्या

1. श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर, अजमेर, पत्र सं. 135

प्रेमलाच्छी का विवाह दिखाने ले गई। चन्द्रराज भी छिपकर वहीं उनके साथ जा पहुंचा।

प्रेमलालच्छी का वर सिंहलपुरी का राजकुमार कनकध्वज कोढी था, अतः उसके स्थान पर एक दिन के लिए राजा चन्द्रराज को वर बना दिया गया। रात्रि को यह भेद प्रेमलालच्छी के सम्मुख प्रकट हो गया। उसने राजा चंद्रसेन के साथ चलने का आग्रह किया, किन्तु चंद्रराज ने उसे कुछ दिनों बाद अपने साथ ले जाने का आश्वासन दिया। वह वहां से चलकर पुनः पेड़ के कोटर में बैठ गया और आभापुरी आ पहुंचा।

जब वीरमती को इस बात का पता चला तो उसने चंद्रराज को मंत्र विद्या से कूर्कट बना दिया। एक दिन शिवनट को यह कूर्कट पुरस्कार स्वरुप प्राप्त हुआ। शिवनट कूर्कट सहित भ्रमण करता हुआ सिद्धतीर्थ पहुंचा। वहां तीर्थ में स्नान करते ही चन्द्रराज ने अपना पूर्व रूप प्राप्त किया। तदनन्तर प्रेमलालच्छी को विरहाग्नि से मुक्त करके उसके साथ अपने राज्य को लौटा। उसने वीरमती को दण्डित कर अपनी रानियों के साथ सुखमय जीवन बिताने लगा। कथा का अन्त चन्द्रराज के पूर्व भव के वृत्तान्त के साथ हुआ है।

वर्णनात्मकता की दृष्टि से यह एक अनुपम रचना है। नट ने अपनी नाट्यकला प्रदर्शन के समक्ष विभिन्न जनपदों की स्थानीय विशेषताओं का रोचक वर्णन किया है। जैन समाज में प्रचलित राजा चंद्रराज और प्रेमलालच्छी की लोककथा को अति चतुराई के साथ अपनी रचना का आधार बना कर उसमें जैन कथानक रुढ़ियों का समावेश कर मौलिक रूप में विकसित किया है।

12. मृगलेखा चौपई—

मृगलेखा एवं मृगांकलेखा चौपई नाम से इसके अनेक जैन रूपान्तर उपलब्ध होते हैं।[1] जैन साहित्य में प्रचलित इस कथा का प्राचीनतम रूप संस्कृत के कवि भट्ट अपराजित की मृगांकलेखा में मिलता है किन्तु यह रचना अब अनुपलब्ध है।[2] राजस्थानी भाषा का सबसे प्राचीन रूप जैन श्वेताम्बर कवि वच्छ कृत "मृगांकलेखा चरित्र" में है। उपलब्ध प्रति में इसका रचनाकाल वि. सं. 1520 के आस-पास

1. गवेषणा पत्रिका, उदयपुर (जुलाई 1953), पृ. 136
2. डा. रामगोपाल गोयल—राजस्थानी के प्रेमाख्यान, परम्परा और प्रगति, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, सं. 1969, पृ. 107

कहा गया है ।[1]

आलोच्य रचना जैन ऋषि रायचंद ने वि.सं. 1838 की भादवा वदि एकादशी को जोधपुर नगर में की ।[2] इसमें 62 ढालों में मृगलेखा की प्रेमनिष्ठ सरस कथा का वर्णन किया गया है । कवि ने इस कथा की प्रेरणा "शीलतरंगिणी" नामक रचना से ली किन्तु उसकी प्रस्तुति में पूर्ण मौलिकता का प्रयोग किया । प्राप्त हस्तलिखित प्रति के अनुसार इसकी कथा इस प्रकार है—

उज्जैनी के सेठ धनसागर की कन्या अति रूपवती थी । उसके लावण्य को देखकर सेठ सागरदत्त का पुत्र सागरचंद उस पर मोहित हो गया । सागरचंद के विरह को जांचकर उसका विवाह मृगलेखा के साथ कर दिया गया । कुछ समय पश्चात् सागरचंद अपनी मुद्रिका मृगलेखा को देकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने को गया । पीछे मृगावती के चरित्र पर आशंका कर उसे गर्भावस्था में ही घर से निकाल दिया गया । मृगावती पर आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा । प्रसूत पुत्र को जंगल में कोई उठा ले गया । उसके शील भंग करने के प्रयत्न किए गए । किन्तु धैर्यपूर्वक उसने सब कष्ट सहते हुए अपने सतीत्व की रक्षा की । अन्त में उसका पुत्र बड़ा हो कर किसी राजकुमारी से विवाह कर अपनी माता से मिला । सागरचंद भी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर मृगावती के पास आया और सब सुख पूर्वक रहने लगे । कथा का अन्त मृगांकलेखा और सागरदत्त के पूर्व भव वृतांत से समाप्त किया गया है ।

13. कलावती चौपाई—

कवि रिख साधु ने इसकी रचना वि.सं. 1861 में आश्विन शुक्ला 1, बुधवार को की । रचना का विषय अवन्ती के राजकुमार शंख और राजकुमारी कलावती के प्रणय से सम्बद्ध है । जैन कवि रिखसाधु ने नायक-नायिकाओं के प्रेमपरक मनोभावों का अति सरस चित्रण किया है । प्रसंगानुसार लोक प्रचलित कथानकरुढ़ियों द्वारा कथा का विकास किया गया है । नगर में भ्रमण करते हुए शंखकुमार पर अनेक युवतियां आसक्त हो गई । नगरवासियों की शिकायत पर उसे देश निकाला दे दिया गया । मार्ग की अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर उसने एक राक्षस की कन्या से विवाह किया । अनेक सिद्धियां उसने उससे प्राप्त कीं । एक दिन वह राजकुमारी

---

1. जैन मंदिर, पानीपत
2. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, हं.ग्रं. 5991

कलावती का चित्र देखकर उस पर मुग्ध हो गया । अनेक विपदाओं को दूर कर उससे विवाह किया । तदुपरान्त अन्य प्रेम कथाओं और जैन आख्यानों के अनुरूप कलावती के कष्टों का काव्य में वर्णन हुआ है और अन्त में कलावती के शीलधर्म एवं प्रेम की एकनिष्ठता की रक्षा करते हुए शंख कुमार का मिलन कराया गया है । कथा का अन्त उनके पूर्व भव की कथा के साथ किया गया है । इस प्रकार आलोच्य रचना माधवानल कामकंदला कथा से प्रभावित लगती है । वहां भी माधवानल के सौंदर्य पर नगर की स्त्रियां आसक्त कही गई हैं । कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला चौपई में भी यही कथातंतु मिलता है ।

जैन प्रेमाख्यानक रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता हैं कि ये रचनाएं रास, चरित्र, फागु, विलास, विवाहलो, वेलि, ढाल आदि शीर्षकों में रचित हैं । अधिकांश रचनाएं प्रबन्धात्मकता लिये हुए हैं जिनकी विषयवस्तु लोक में प्रचलित जैन नायक-नायिकाओं की प्रेमकथाओं से सम्बद्ध हैं । ये नायक-नायिका राजकुल के राजकुमार-राजकुमारियों या राजकुल से सम्बन्धित मंत्री, पुरोहित, सामन्त, सेठ के पुत्र-पुत्रियां हैं । इनमें प्रेम का प्रारंभ प्रत्यक्ष-दर्शन और रूप-गुण-श्रवण द्वारा हुआ है । नायक-नायिकाओं में प्रेमोद्दीपन एवं उनके संयोग में सहायक तोता, मंत्री-पुत्र, भाट, सखियां आदि पात्र हुए हैं । इस संयोग में उन्हें मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । नायिका की प्राप्ति के उपरान्त पुनः अपने घर लौटते हुए पहले से भी अधिक विपदाओं (ओखा) का पुनः सामना करना पड़ता है, यथा, राक्षसियों द्वारा नायक को रोकना[1], नायक-नायिका के विश्रामस्थल की छत का गिरना[2] आदि । किन्तु इन बाधाओं से वे विद्याधरों-विद्याधारियों, वैताल, नायक द्वारा इनसे प्राप्त जादुई विद्याओं, शिव-पार्वती आदि की सहायताओं से मुक्त हुए हैं ।

सभी जैन प्रेमाख्यानों का प्रारंभ मंगलाचरण द्वारा हुआ है । ये मंगलाचरण सरस्वती वंदना के साथ गुरुवंदना, जिनप्रभु आश्रयदाता अथवा तत्कालीन शासक की स्तुति के साथ हुआ है । मंगलाचरण के बाद जंबूद्वीप, शत्रुंजय गिरि, समेदशिखर आदि का स्मरण करते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है । तदुपरान्त रचना का आरंभ विस्तार से अनेक घात प्रतिघात युक्त घटनाओं के साथ हुआ है । प्रायः सभी जैन प्रेमाख्यानक रचनाओं का अन्त पूर्व भव के वृत्तान्त के साथ हुआ है । इससे यह

---

1. तेजसार रास चौपई; जिनपालित जिन रक्षित संधिगाथा (कुशललाभ);पुण्यसार चौपई (समयसुंदर)
2. अगड़दत्तरास (कुशललाभ); कमलावतीरास (रिख साधु)

स्पष्ट होता है कि जैन सम्प्रदाय में पूर्व जन्म एवं कर्मवाद को यथोचित स्थान मिला है। अधिकांश रचनाएं ढालों, प्रकाशों, विलासों अथवा छन्द विशेषों में विभक्त हैं। अन्त में पुष्पिका अवश्य मिलती है, जिनमें रचना-काल, गुरु परम्परा, गच्छ परम्परा, लिपिकाल आदि का वर्णन किया गया है।

जैन प्रेमाख्यानकों का मूल उद्देश्य शीलव्रत की प्रतिष्ठा करना है। शीलव्रत से तात्पर्य प्रेम की एकनिष्ठता से है। इसीलिये जैन प्रेमाख्यानकों में आरंभ में घोर शृंगार दिखाई देता है किन्तु उसका अन्त शान्त रस से होता है। इन प्रेमाख्यानों में चित्रित शृंगार में अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु नायक-नायिका विपत्तियां भोगने के बाद भी प्रलोभनों से दूर रह अपने एकनिष्ठ प्रेम की अडिगता सिद्ध करते हैं। यह उपक्रम जैन कवियों-मुनियों की दूरदर्शिता एवं व्यावहारिकता का परिणाम है। उनका यह वैराग्य चित्रण मात्र कल्पना की उड़ान नहीं बल्कि जीवन के भोग में से तप कर निखरा हुआ था।[1] तेजसार, अगड़दत्त स्थूलिभद्र, नेमीनाथराजुल, पृथ्वीराज वाग्विलास, विद्याविलास, प्रेम-विलास-प्रेमलता, बच्छराज, मृगलेखा कमलावती आदि से सम्बन्धित रचनाएं इस कथ्य की साभिप्राय प्रामाणिक कृतियां हैं।

जैन कवियों ने अपनी प्रेमाख्यानक रचनाओं को और अधिक व्यावहारिक एवं प्रामाणिक बनाने निमित्त पुराणों में प्रचलित लोक प्रसिद्ध उपाख्यानों यथा-नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान, कामकंदला आख्यान आदि को अपनी कथाओ का आधार बनाया है।इन अलौकिक एवं पौराणिक प्रेमाख्यानों के आदि और अन्त में इन्होंने अपने सिद्धान्तों का आरोपण किया है। प्रत्येक रचना में किसी जैन मुनि से उपदेश सुन कर दीक्षित होना और वृद्धावस्था में अपने पुत्र को राज्य सौंपकर संसार से वीतराग ग्रहण करने का उल्लेख इनमें मिलता है।[2] यदि इन प्रेमाख्यानों में इन धार्मिक सिद्धान्तों के आरोपण को पृथक कर दिया जाय तो ये रचनाएं विशुद्ध सामान्य प्रेमाख्यानक रचनाएं बन जायेंगी। इस प्रकार जैन प्रेमाख्यानक रचनाओं में सम्पूर्ण गृहस्थ जीवन का चित्रण मिलता है। यहां नायक-नायिका जब संसार त्याग करते हैं तो सभी सांसारिक सुखों के उपभोग के उपरान्त अपने पुत्र को राजपाट संभला करके। अतः इन रचनाओं का अन्त सुखद शान्त रस में होता है तथा लोक रति का पर्यवसान ब्रह्म रति में होता है। इसीलिये श्रीचंद जैन ने कहा है, "जैन काव्य में शान्ति या शम की प्रधानता है।.....नारी

---

1. डा. रामगोपाल गोयल, राजस्थानी के प्रेमाख्यानः परंपरा और प्रगति, पृ. 160
2. अनेकान्त (त्रैमासिक शोध पत्रिका), जुलाई-दिसम्बर 1977, पृ. 59 (लेखक का लेख)

के शृंगारी रूप, यौवन तथा तज्जन्य कामोत्तेजना आदि का चित्रण इसी कारण जैन कवियों ने बहुत सूक्ष्मता से किया है।"[1]

प्रायः सभी जैन प्रेमाख्यानकों में अलौकिक शक्तियों, अटूट आस्था, जादू-टोने, मंत्र-तंत्र के प्रति विश्वास, भविष्यवाणियों में श्रद्धा, स्वप्नफल और शकुनों में विश्वास का खुल कर चित्रण मिलता है।

"मृगलेखा चौपई" (रामचंद) में उल्लेख है कि चक्रेश्वरीदेवी पत्नी से रुष्ट सागरदत्त को स्वप्न में आकर अपनी पत्नी से मिलने का आदेश देती हैं।[2] चंद्रराज चरित्र (मोहन विजय) में वर्णन है कि सिद्धराज तीर्थ में स्नान करने से मुक्ति मिलती है। "उत्तमकुमार चरित्र" से विदिति होता है कि रानी ने जब स्वप्न में सफेद हाथी देखा तो उसे उत्तम गुणों वाले राजकुमार के जन्म का द्योतक कहा गया।[3] भीमसेन हंसराज चौपई (कुशललाभ) की नायिका मदनमंजरी को भी हंस की भविष्यवाणी पर इक्कीस दिन बाद गर्भ प्राप्त हुआ।[4]

राजस्थानी के जैन प्रेमाख्यानों की कथावस्तु का मूल आधार लोक प्रचलित कथाएं रही हैं। अतः जैन समाज में प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजों, लोक विश्वासों, सांस्कृतिक परम्पराओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। जैन संस्कृति में प्रायश्चित का बड़ा महत्व है। रणसिंह कुमार को जब अपनी पत्नी कमलावती की निर्दोषता का पता चलता है तो वह अपने क्रूर व्यवहार के प्रायश्चित के रूप में चिता में जलने को तत्पर हो जाता है।[5] जैन समाज में अधिक दिनों तक स्त्री का पीहर में रहना तथा पुरुष का ससुराल में रहना परिवार की रिद्धि सिद्धि के लिये हानिकारक माना जाता था।[6]

---

1. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 132-133
2. रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ह. ग्रं. 5991
3. सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, छंद 2-3, पृ. 111
4. एक देह छंडी करी इण घरि मुझ अवतार
   मदन मंजरी नह उदरि, अवतारे सू निद्धारि ॥253
   एल.डी. इन्स्टीट्युट, अहमदाबाद, ह.ग्रं. 1217
5. इम कहियो ताना पुरुष तेहा एम कहहे।
   चिता करउ घव बाटणइ काष्ठ आणह ॥
   —रणसिंह कुमार चौपई (ह.लि.)—जैन श्वेताम्बर मंदिर, अजमेर
6. स्त्री पीहर, नर सासरई, संजुड़िया थिर पास।
   एता हुई अलखा मणा, जड मंडइ रिधि नास ॥—वही

राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानक लोक प्रचलित कथाओं, पौराणिक एवं निजन्धरी घटनाओं पर आधारित है। अतः तत्सम्बन्धी कथानक रुढ़ियों (अभिप्रायों) का इन कवियों द्वारा प्रयोग करना स्वाभाविक ही है। इनके प्रयोग से कथा के घटना व्यापार को त्वरा मिली है। सरसता और रोचकता बढ़ी है तथा कथानक को संकेतों के माध्यम से संक्षिप्तता भी प्राप्त हुई है। राजस्थानी जैन कवियों की प्रेमाख्यानक रचनाओं में प्राप्त प्रमुख कथानक रुढ़ियां हैं-नायक का अति प्राकृतिक रूप में जन्म, मृत व्यक्ति का मंत्रादि शक्तियों द्वारा पुनर्जीवित होना, आकाश गमन, दिशा एवं स्थल वर्जन, भविष्य सूचक स्वप्न, रूप परिवर्तन द्वारा लड़ाई, कुलटा स्त्री का पति अथवा प्रेमी को धोखा देना, वन में नायक का मार्ग भूलना, सौतिया डाह, नायिका को अकेली पाकर उसका अपहरण, प्रेम-परीक्षा, नायिका की चिता के साथ नायक का जल मरने का निर्णय, जादू की डोरी, शुक रुढ़ि, दोहद कामना, नायिका द्वारा नायक का अवरोध, दो भाइयों का कथातंतु, इंद्र महोत्सव की रुढ़ि, मार्ग में नायक अथवा पात्र को सरोवर, महल, योगी का मिलना और उनका श्रावक बनना, सत की परीक्षा इत्यादि।

तेजसार रास (कुशललाभ) में वर्णित हैं कि उसका जन्म दीपदान प्रज्वलन के फलस्वरूप हुआ।[1] इसी भांति का अतिप्राकृतिक जन्म भीमसेन हंसराज चौपई (कुशललाभ) में हंसराज का होता है।[2] अगड़दत्तरास[3] और भीमसेन हंसराज चौपई[4] (कुशललाभ) में विद्याधर और तापस मदनमंजरी को अपने मंत्रादि द्वारा जीवित करते हैं। इस रुढ़ि का मुख्य ध्येय कथा को सुखान्त बनाना है। थामसन की तालिका में यह रुढ़ि E वर्ग में पुनर्जीवन शीर्षक के अन्तर्गत EO-E 199 प्रविष्टि संख्या पर अंकित है।

अदिशा अथवा स्थल वर्जन सम्बन्धी कथानक रुढ़ि का बच्छराज चौपई (विनयलाभ), उत्तम कुमार (विनयचंद्र), जिनपालित जिनरक्षित संधि (कुशललाभ) आदि रचनाओं में उल्लेख हुआ है।प्रथम रचना में नायक बच्छराज वर्जित स्थल यक्षवन में जाकर संकटों में फंस जाता है। उसी वन में सरोवर में स्नान करती विधाधरी की कंचुकी चुराता है। द्वितीय रचना में उत्तम कुमार वर्जित बावड़ी में जाकर वहां राक्षस

---

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह.ग्रं. 26546, चौ. 149-51
2. एल.डी.इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद, ला.द.ग्रं.1217, छंद 253-261
3. भण्डारकर प्राच्य विद्या मंदिर, पूना, ह.ग्रं. 605; चौ. 258
4. एल.डी. इन्स्टीट्युट, अहमदाबाद, ला.द.ग्रं. 1217, चौ. 230

कन्या सुंदरी मदालसा के प्रेम में पड़ जाता है । तीसरी रचना में दक्षिण दिशा में जाने पर जिनपालित को राक्षस से युद्ध करना पड़ता है ।

राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानों में दो भाइयों का कथातंतु काफी उभरा है । इस रुढ़ि का मूल रुप इन्द्र-उपेन्द्र, अश्विनी बंधु की वैदिक कहानियों एवं रामलक्ष्मण, कृष्ण-बलराम की महाकाव्य कालीन कहानियों में सुरक्षित हैं । जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा, पार्श्वनाथ दसभव स्तवन (कुशललाभ), चित्रसेन पद्मावती रतनसार चौपई (रामविजय) हंसराज-बच्छराज चौपाई (विजयभद्र) आदि रचनाओं में इस रुढ़ि का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

दोहद-सम्बन्धी कथानकरुढ़ि का प्रयोग भी जैन प्रेमाख्यानक रचनाओं में बहुतायत से मिलता है । ब्लूमफील्ड ने इसके छह रुप बताये हैं । कुशललाभ की भीमसेन हंसराज चौपई में मदनमंजरी सौत की आशंका से अपने पति से अमरफल प्राप्त करने का प्रस्ताव करती है, जिसे कनकवती की माता व्यंतरी हंसिनी द्वारा प्राप्त कर उसकी अभिलाषा का शमन करती है । समयसुंदर कृत "मृगावती रास" की मृगावती गर्भावस्था में रक्त से भरी बावड़ी में स्नान करने की अभिलाषा व्यक्त करती है ।

राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानक रचनाएं काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । शृंगार रस से आरंभ हुई शान्त रस में परिणत इन रचनाओं में अद्‌भुत, करुण, भयानक, वीभत्स, वीर रसों के यथा-प्रसंग सटीक वर्णन मिलते हैं । प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में नायिका की प्राप्ति के बाद लौटते वक्त राज्य का किसी न किसी प्रतिनायक (मानव अथवा अलौकिक शक्ति) से युद्ध हुआ है । अहिंसावादी होते हुए भी जीवन के सत्य से ये जैन कवि विमुख नहीं हुए । मोहनविजय कृत मानतुंग मानवती रास में आमने-सामने होकर भिड़ रही सेनाओं का शब्द चित्र इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—

सेन बेहु उलटी आमुही-सामुही, गुणी अणै राग सिंधु बजाया ।
रण चढ़ी अंबरे अश्व पड़ताल थी तरण ना किरण नै नैण छाया ।
बड़ा योध जूटा धरा मीहि छूटै पटा, गटपटा लाल शेर लपेटा ।
अटपटा झटपटा झपट करता झटा, खरपटा तेहुवा मेट मेटा ।
धम धमे धिगति हांकायर कमकमै चमचमै छाव वही शुक्रधारा ॥[1]

1. जैन श्वेताम्बर मंदिर, अजमेर की प्रति ।

ऐसा ही एक वात्सल्य रस का चित्र प्रस्तुत है, जहां वर्षों बाद पुत्र के लौटने पर वात्सल्य भाव से परिपूर्ण राजा की मानसिक दशा का चित्रण हुआ है—

उत्तम नृप मिलीयो जई, बाप भणी धरि नेह ।
मन विवस्यौ तन उल्लस्यो, रोमांचित थयी देह ॥1 ॥

मकरध्वज भूपाल पणि, सुत उभरि करि मोह ।
अंगई आलिंगन दीयौ सखदीवधारी सोह ॥2 ॥[1]

इन कवियों ने अपनी कथावस्तु को हृदयंगम कराने के लिए सादृश्यमूलक उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । यह प्रयोग सहज, स्वाभाविक एवं भावोत्कर्षक हैं । इन अर्थालंकारों के अतिरिक्त इनमें राजस्थानी के वयणसगाई अलंकार का भी कई जगह सफल निर्वाह देखने को मिलता है, यथा—

सोवन मई-सुंदर आवास ॥317
—कुशललाभ कृत-तेजसार रास चौपई

रायह दीठो तेह सरुप ॥68 ॥
—वही, भीमसेन हंसराज चौपई

इस सुंदर अलंकार योजना के साथ ही विविधि छन्दों से भी ये प्रेमाख्यान रुपायित हैं । जैन प्रेमाख्यानक रचनाओं में प्रयुक्त प्रमुख छंद है—दूहा, चउपई, गाहा, छप्पय, कवित्त, बेअक्खरी, त्रोटक, वस्तु, काव्य, छंद, रोमकी, नाराच, त्रिभंगी, चावकी, पद्धड़ी, अड़मल इत्यादि । इन छन्दों के अतिरिक्त इन कवियों ने लोक प्रचलित ढालों को भी ग्रहण कर इन रचनाओं को संगीतात्मकता प्रदान की है । संगीत तत्व को बनाये रखने की दृष्टि से अनेक स्थानों पर इन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपर्युक्त छन्द काव्यशास्त्रीय लक्षणों से मेल नहीं खाते । तुक के आग्रह से अनेक स्थलों पर हकार, इकार, और अकार रुप कर दिये गये हैं ।

राजस्थानी जैन प्रेमाख्यानों की भाषा मध्यकाल में प्रचलित लोकभाषा राजस्थानी है, जिसे विद्वानों ने "जूनी गुजराती" अथवा प्राचीन राजस्थानी कहा है । यह राजस्थानी व्याकरण सम्मत, गुजराती शब्दों और विभक्तियों की बहुलता लिये हुए है । इसका

1. विनयचंद्र कुसुमांजलि में संकलित उत्तमकुमार चरित्र चौपई, पृ. 201, (प्रकाशक सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर)

प्रमुख कारण गुजराती और राजस्थानी भाषा का एक ही मूल शैरसेनी अपभ्रंश से उद्‌गम एवं मध्यकाल में गुजरात और राजस्थान की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता का होना है ।

इस प्रकार राजस्थानी की जैन प्रेमाख्यानक रचनाएं मध्यकालीन राजस्थानी संस्कृति एवं साहित्यिक प्रवृत्ति के जीवन्त प्रतीक है । उनमें प्रकृति का खुल कर प्रयोग किया गया है । ये प्रयोग आलंबन की अपेक्षा उद्दीपन रूप में अधिक हुए हैं ।

◆◆◆

5

जैन देवियां एवं तत्सम्बन्धी जैन रचनाएं

जैनधर्म ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। निराकार आत्मा जहां जैन धर्म के ज्ञानमार्गी स्वरूप को स्पष्ट करती है, वहीं वीतरागी जिनेन्द्र के स्वरूप का स्तवन उनके भक्तिमार्ग की ओर संकेत करता है। जैन धर्म में भक्ति का यह आगम बौद्ध एवं वैष्णव-संस्कृति का परिणाम है। अपने धर्म को अधिक व्यापक बनाने के लिये जैन धर्माधिष्ठताओं ने वैष्णवी राम और कृष्ण के अवतारों की कथा को ही कतिपय परिवर्तनों के साथ ग्रहण कर लिया। उनमें व्याप्त गणेश, भैरव आदि की पूजा भी हिन्दू धर्म का प्रभाव है।

यों तो जैन समाज में देवी-पूजा के संकेत तीसरी शताब्दी (विक्रमी) से ही लक्षित होने लगते हैं किन्तु उसे साकार स्वरूप वैष्णव भक्ति आन्दोलन के साथ 13 वीं और 14 वीं शताब्दी में ही मिला। हिन्दू देवी महिषासुरमर्दिनी का रत्नप्रभसूरि द्वारा जैन धर्म में दीक्षित कर "सच्चियामाता" के रूप में मान्यता देना तथा बौद्ध देवी "कुरकुल्ला" का देवसेनसूरि के उपदेश को सुनकर जैन धर्म ग्रहण करना आदि इसके प्रमाण हैं। अतः स्पष्ट हैं कि जैनधर्म में देवी-पूजा बौद्ध एवं वैष्णवों में प्रचलित देवी भक्ति का परिणाम है।

यद्यपि जैनधर्म में देवी भक्ति वैष्णव-भक्ति परम्परा का प्रतिफल है, पर जैनियों ने उनके स्वरूप को ज्यो का त्यों स्वीकार कर लिया हो, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने उन्हें अहिंसावादी स्वरूप दे दिया था। भक्तों की इच्छा को जैन-देवियों ने अपनी इसी प्रवृत्ति द्वारा फलित किया है। सिद्धि की प्राप्ति के लिये अनेक मंत्र तंत्र, स्तवन सज्झाय का भी उन्होंने विधान किया है। "भैरव पद्मावती कल्प", "चतुःषष्टियोगिनी स्तोत्रम्", "चतुः षष्टियोगिनी पूजनम्", "योगिनी-तन्त्रम्" आदि ग्रन्थों का इस दृष्टि से

विशिष्ट महत्व है।

जैन भक्ति में देवियों के दो स्वरूप दृष्टिगत होते हैं—64 योगिनियों के रूप में और चौबीस तीर्थंकरों की शासन देवियों अथवा विद्या देवियों के रूप में। 64 योगिनियों के नाम प्राप्त ग्रन्थों[1] एवं पुरातत्व संग्रहालयों में संग्रहीत मूर्तियों[2] में समान नहीं है।

चौबीस तीर्थंकरों की भांति ही उनकी चौबीस शासन देवियों की परिकल्पना भी जैन भक्ति में है, जिनके नाम हैं—1. चक्रेश्वरी, 2. रोहिणी, 3. प्रज्ञाप्ति, 4. पविशृंखला, 5. खड़गवरा, 6. मनोवेगा, 7. काली, 8. ज्वालिनी, 9. महाकाली, 10. मानवी, 11. गौरी, 12. गांधारी, 13. वैरोटी, 14. अनन्तमती, 15. मानसी, 16. महामानसी, 17. जया, 18. तारावती (विजया) 19. अपराजिता, 20. बहुरूपिणी (बहुल्या), 21. चामुण्डा, 22. अम्बा, 23. पद्मावती और 24. सिद्धायिका।[1] इनमें पद्मावती, अम्बिका (अम्बा), चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, सच्चियामाता, सरस्वती और कुरुकुल्ला आदि सात देवियों की विशिष्ट मान्यता है। इन देवियों की भक्ति में अनेक जैन भक्त कवियों ने स्तोत्रों, ढालों, छन्द, वचनिका आदि नामों से उल्लेखनीय रचनाएं बनाई है। इनमें से कुछ रचनाएं निम्नलिखित हैं—

1. कीर्तिमेरू कृत अंबिका छंद (वि.सं.1487)
2. सुधारु कृत प्रद्युम्नचरित्र का स्तुति अंश,
3. विजयकुशल कृत शारदा छंद (वि.16 वीं शती)
4. जिनप्रभसूरि कृत विधिप्रभा (वि.16 वीं शती)
5. विनयसमुद्र कृत रोहिणेय रास (वि.स. 1605)
6. कुशललाभ कृत जगदंबा छंद अथवा भवानीछंद (वि.17 वीं शती)
7. कुशललाभ कृत महामाई दुर्गा सातसी (वि. 17 वीं शती)

---

1. (क) जिनप्रभसूरिकृत विधिप्रभा,
   (ख) चतुः षष्टियोगिनी स्तोत्रम्,
   (ग) 64 योगिनी स्तोत्र—श्री अगरचंद नाहटा का लेख; शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 1
   (घ) 64 योगिनी नामावली
   (ङ) चतुः षष्टि योगिनी यंत्र—वही, वर्ष 14, अंक 3
2. भेजधार के 64 योगिनियों के मन्दिर की मूर्तियों पर वर्णित नाम

8. मालदेव कृत फुटकर छंद (वि.17 वीं शती)
9. वादिचंद्र कृत अंबिका कथा (वि.17 वीं शती)
10. हेम कवि कृत पद्मावती छंद (वि.17 वीं शती)
11. अज्ञात कवि कृत अंबिका देवी पूर्वभव वर्णन तलहरा,
12. संघ विजय कृत भारती अथवा भगवती छंद (वि.सं. 1687)
13. लक्षराजकृत कालिका जी रा दूहा (वि.सं. 1708)
14. कान्ह कवि कृत चौथ माताजी रो छंद (वि.सं.1767), और
15. जयचंद यति कृत माताजी री वचनिका (वि.सं. 1776)

इनमें से कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

अंबिका छंद—

जैन देवियों सम्बन्धी इस स्तोत्र काव्य की रचना कीर्तिमेरू ने वि.सं. 1487 के आस-पास की। कवि ने इसमें अंबिका की स्तुति हरिगीतिका छंद की देशी ढाल में की है। अनुप्रास और माधुर्य की छटा कीर्तिमेरू का वैशिष्ट कहा जना चाहिये। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"सुगुण मंदिर, अतिहि सुंदर, सिर ससिहर धारिणी,
कानि कुंडल, सु-मंडल, लीण गजगति गामिणी,
रूपरंभ कि वयण चंद कि, नयण पंकज हारिणी,
नयणि अंजन जनह, भवह भंजण भामिणी ॥"

शारदा छंद—

विनय कुशल के शिष्य शांति कुशल द्वारा रचित यह रचना दो पत्रों में प्रतिलिपित है। कवि ने इसकी रचना अडयल छंद में की है। देवी के विभिन्न पर्यायों द्वारा उसके गुणों का बखान करना ही इस स्तोत्र कृति का प्रमुख लक्ष्य है। मां शारदा के गुणों को स्पष्ट करने वाली कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

"तू अंबा बे तुं अंबाई, तु श्री माता तु श्रुतदाई,
तू भारती तूं भगवती, तु कुमारी, तु गुणसती
तू वराही तुहिज चंडी, आदि ब्रह्माणी तुंहिज मंडी
हरिहर ब्रह्म अवर जे कोई, ताहरी सेव करे ते कोई

देश देशांतर कांई भमीई ? अड़सठ तीरथ तोय सिर नमीई
मनवंछित दाता मतवाली, सेवक सार करो संभाली
धणुं किस्युं, कहूं वाली वाली, बांडी वेला तु रखवाली
चालक देवी चाचर टाणी, निला नींबानी तू धणी आणी
तू चमला तू चारण देवी, खोडी आरी बिसहरि समरेणी ।"

जगदम्बा छंद अथवा भवानी छंद–

अभयधर्म के शिष्य वाचक कुशललाभ द्वारा रचित यह देवी भक्ति सम्बन्धी रचना हस्तलिखित ग्रन्थालयों में जगदम्बा छंद एवं भवानी छंद दोनों नामों से उपलब्ध है । संभव है कवि ने मूल रचना के समय ही इसे उक्त दोनों शीर्षकों "जगदम्बा छंद अथवा भवानी छंद" से प्रसिद्ध किया हो । यह भी संभव है कि कालान्तर में किसी प्रतिलिपिकार ने "जगदंबा" और उसके पर्याय नाम "भवानी" में अर्थभिन्नता न समझकर उक्त नाम दे दिया हो । सामान्य पाठान्तर के अतिरिक्त दोनों ही शीर्षकों की प्रतियों में छंदों की संख्या और पुष्पिका के अतिरिक्त अन्य भेद लक्षित नहीं होते । जगदंबा छंद वाली प्रति[1] में 48 छंद है, जबकि भवानी छंद शीर्षक प्रति में[2] 42 छंद । जगदम्बा छंद वाली प्रति की पुष्पिका में एक ही छंद (कळस) में वर्णित है पर "भवानी छंद" वाली प्रति में यह दो कळस छंदों में लिखी गई है ।

दोनों ही प्रतियों में कथा समान है । देवी भक्ति सम्बन्धी कवि कुशललाभ की यह लघु भक्ति रचना है । इसमें कवि ने जगदंबा की स्तुति करते हुए उसके माहात्म्य को स्पष्ट किया है । इस विवेचन में कुशललाभ ने देवी के 263 नामों का उल्लेख किया है । प्राप्त दोनों ही प्रतियों में कृति का रचनाकाल नहीं दिया गया है किन्तु जगदम्बा छंद वाली प्रति में उसका लिपिकाल वि.सं. 1734 वर्णित है । कवि की अन्य रचनाओं के आधार पर इसे वि.सं. 1625 से वि.सं. 1645 के मध्य किसी चौमासे में लिखित रचना कहा जा सकता है ।

महामाई दुर्गा सातसी–

कुशललाभ की मातृका विषयक रचनाओं में यह सर्वाधिक वृहत स्तोत्र रचना

---

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर ह.लि.ग्रं. 602
2. (क) एल.डी. इन्स्टीट्यूट आफ इंडोलोजी, अहमदाबाद ह.ग्रं. ला.द. 2493
   (ख) श्री अगरचंद नाहटा से प्राप्त प्रतिलिपि

है। इसमें कुल 366 छंद है। प्रथम 362 छंदों में देवी दुर्गा की उत्पत्ति एवं उसके सुकृत्यों का पद्यबद्ध निरूपण किया गया है तथा अन्तिम चार छंदों (कवित्तों) में कृति (सातसी) का माहात्म्य देते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है।

कुशललाभ की इस रचना का मूल स्त्रोत दुर्गासप्तशती का पौराणिक आख्यान माना जा सकता है। किन्तु आख्यान मे कुशललाभ ने आवश्यकतानुसार निम्नलिखित परिवर्तन कर मौलिकता प्रदान की है—

1. कुशललाभ ने कथा को शीर्षक अथवा अध्यायों में विभक्त नहीं किया जबकि दुर्गा सप्तशती में सारी कथा अध्यायों में कही गई है। साथ ही यहां मूल कथा में वर्णित देवी अथवा राक्षसों की सेना, उनके रण-कौशल अथवा महात्म्य आदि का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता।
2. यहां कथावाचक स्वयं कवि हैं। ऋषि मार्कण्डेय जी की ओर मात्र संकेत ही किया गया है कि राजा और वैश्य ने उनसे देवी-चरित्र को समझाने का निवेदन किया।
3. आलोच्य कृति में सुरथ और वैश्य (प्रधान पुत्र) जंगल में यकायक मिले हैं, जहाँ उन्होंने न अपना परिचय आपस में लिया है और न ही अपने अन्तर्द्वन्द्व का बखान किया है।
4. "महामाई दुर्गा सातसी" में मधु कैटभ राक्षसों का जन्म भगवान विष्णु के कानों से हुआ है न कि कानों के मैल से। उसी भांति चेतना प्राप्त होने पर दोनों राक्षसों ने भगवान विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा है, जबकि "मार्कण्डेय पुराण" में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।
5. पूर्वकाल में देवताओं एवं राक्षसों के बीच सौ वर्षों तक हुए युद्ध का वर्णन, राक्षसों की सेना के प्रति महिषासुर व देवताओं के नेता इन्द्र का भी कवि ने "सातसी" में कोई, उल्लेख नहीं किया। यहां तो कवि ने मधु और कैटभ के वध के तुरन्त बाद महिषासुर का देवताओं के साथ युद्ध दिखा दिया है।
6. सातसीकार ने सुग्रीव और शुंभ-निशुंभ के वार्तालाप को पूर्णतः नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। यहां सुग्रीव को अत्यन्त चतुर कहकर शुंभ देवी के पास भेजता है, जहां सुग्रीव अपनी बुद्धि के अनुसार सारी बातचीत देवी के साथ करता है, जबकि मार्कण्डेय पुराण में शुंभ द्वारा कथित संदेश ही सुग्रीव देवी को सुनाता है। इसी भांति चण्ड-मुण्ड की मृत्यु के पश्चात् शुंभ की सुग्रीव

द्वारा उपयुक्त युक्ति जानना भी कवि कुशललाभ की मौलिक कल्पना है।

7. विभिन्न देवताओं की शक्तियों से संपूरित हो महामाई दुर्गा सातसी की देवी ने शुंभ से विषकन्या के रूप में वरण करके महान् दैत्य रक्तबीज़ को उसी के स्वामी शुंभ की आज्ञा से स्वयं ने मारा, जबकि "मार्कण्डेय पुराण" में देवी द्वारा रक्तबीज के संहार पर शुंभ-निशुंभ ने उस पर प्रहार किया।

8. "मार्कण्डेय-पुराण" की भांति कुशललाभ ने दुर्गा देवी की फलस्तुति एवं राजा सुरथ और वैश्य को देवी द्वारा प्रदत्त वरदानों की कथा का अन्त में कोई उल्लेख नहीं किया है। इसकी अपेक्षा 24 भुजंगी छंदों में देवी के विभिन्न रूपों की स्तुति की है। इससे जहां कथा संक्षिप्त हुई है, वहीं नवीनता और रोचकता का भी सफल निर्वाह हो सका है।

प्राप्त दोनों प्रतियों में कवि अथवा लिपिकार ने रचनाकार सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं किया है। इनमें से एक प्रति त्रुटित[1] है, पर लिपि सुवाच्य है, जबकि द्वितीय प्रति[2] पूर्ण है। दोनों में पाठभेद तनिक भी नहीं है।

पद्मावती छंद—

जैन कवि हेम ने इसकी रचना की है, जिसका संपादन "विश्वम्भरा" त्रैमासिक पत्रिका (वर्ष 8, अंक 1, 1973) में प्रकाशित किया जा चुका है।[3] इसमें कुल दस छन्द हैं। "कळस" शीर्षक छंद में कवि ने जैन तीर्थकरों में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री देवी पद्मावती के महत्व को स्पष्ट करते हुए अपना नामोल्लेख किया है।[4] इससे अधिक रचना में कृतिकार का परिचय नहीं मिलता। किन्तु काल की दृष्टि से

---

1. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, ह.ग्र. 48
2. वही, ग्रं. 68 (घ)
3. मनमोहन स्वरूप माथुर—जैन देवियां और हेमकृत पदमावती छंद पृ. 43-46
4. अतिसय वंत अपार, सदा जुग साची देवी
समकित पाळे सुद्ध जिन सासन सेवी
अधो मध्य आकास रास रमती अमरी
सेवक जिन साधार सार करे समरी
पुप्फावती पास प्रति मस्तक धारणी।
कवि हेम कहे हरष सूं पदमावती पूजे जयकारणी॥
—विश्वम्भरा, बीकानेर, वर्ष 8, अंक 1, पृ. 46

जैन कवि हेम को 17 वीं शताब्दी का माना जा सकता है।

कवि हेम ने आलोच्य रचना के आरंभ में पद्मावती का सम्बन्ध पार्श्वनाथ और धरणेंद्र से बताते हुए उसके गुणों एवं नामों का उल्लेख किया है। धरणीधर, रांणी, सोमझणी, निर्दोषी, शीलवती, जैनमाता, मातंगी, देवी पद्मे आदि पर्यायों के कल्याणकारी स्वरूप की ही स्थापना की है।

आलोच्य छंद कृति में देवी के रूप-सौंदर्य का वर्णन उपमानों एवं लालित्यमयी शब्दावली में किया है। इस प्रकार कवि हेमकृत पद्मावती छंद जहां धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, वहीं उसका साहित्यिक महत्व भी अवर्णनीय है।

भारती अथवा भगवती छंद—

कवि संघविजय ने इस छंद की रचना विक्रम संवत् 1687 में की।[1] सरस्वती स्तोत्र के रूप में इसका अति महत्व है, इसीलिये इसे भारती छंद भी कहा गया है। सम्पूर्ण स्तोत्र रचना 42 अड़यल छंदों में निबद्ध है। प्रारंभिक छंद (अनुष्टुप) संस्कृत[2] में कहा गया है और उपसंहार अन्य जैन ग्रंथों की परम्परानुसार "कलस" छंद में न कर प्राकृत के गाहा छंद[3] में किया गया है। आलोच्य रचना में कवि संघविजय ने शक्ति महात्म्य के साथ ही सोलह विद्या-देवियों, चौबीस शासन देवियों, चौसठ योगिनियों एवं नवदुर्गाओं के नामों की स्तुति भी की है। कवि का कथन है कि सचराचर में व्याप्त देवी के असंख्य स्थान नाम हैं—

"जल थल मंगल वसई कैलासा, गिरिकंदर पुर पट्टण वासा,
स्वर्ग मर्त्य पातालई जाणई, नाम अनेकई कविय वखाणई ॥"

अन्य जैन कवियों की भांति ही संघविजय ने भी अपनी इष्ट देवी का स्वरूप निरूपण करते हुए उसके अप्रतिभ शृंगार को रूपायित किया है—

---

1. संवत चंद्रकला अति उज्ज्वल, सायर सिद्धि आसी सुदि निर्मल।
पूनिम सुरगुरुवार उदारा, भगवती छंद रच्यउ जयकारा ॥
(चंद्रकला—16, सायर-7, सिद्धि-8) एल.डी. इन्स्टी, अहमदाबाद की प्रति)

2. सकल सिद्धि दातारं पार्श्वे नत्वा स्तवीभ्यहम्।
वरदां शारदां देवों जगदानन्दकारिणीम्।

3. इय बहुभत्तिभरेणं, अडयलछंदेण संधुआ देवी।
भगवई तुज्झ पसाया, होउ सया संधकल्लाणं ॥44

"गौर वरण तनु तेज अपारा, जाणे पूनिम शशि आकारा
श्वेत वस्त्र पहिर्या शृंगारा, माहि कई मृगमद कई धनसारा ।

× × ×

अणियाळी आंजी आंखड़ली, भमुह कमाण श्याम कंकडली,
मुख निरमल शारद-शशि दिप्पई, काने कुंडल रवि शशि जिप्पई ॥

× × ×

कटि मेखल खलकई कहि चूडी, रतन जडित सोवन मई रुडी ।
चरणे घूघर घमघम घमकई, झांझर रमझिम झणकई ॥"

चौथमाता जी रो छंद—

"गणपति छंद" के रचयिता कवि कान्ह की अन्य महत्वपूर्ण रचना "चौथ माताजी रो छंद" है । कवि कान्ह भावड़गच्छ से संबंधित था—"श्री भावड़ गच्छ शृंगार उदो" । आलोच्य रचना की प्रति राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में संगृहीत है, जिसके आधार पर इसका संपादन कर डा. ब्रजमोहन जावलिया ने "वरदा" पत्रिका में प्रकाशित करवाया । इस प्रकाशित अंश के अनुसार कवि ने इस रचना में चौथ माता के व्रत का आधार लेकर चौथ माता की दुर्गा रूप में स्तुति की है । कान्ह ने इस देवी भक्ति सम्बन्धी रचना की सम्पूर्ण सामग्री को 101 छंदों (दूहे, मोतीदास, भुजंगी, श्लोक, मूळचाळा, कवित्त) में समाहित किया है । आरंभ में देवी के पौराणिक नामों, निवास स्थानों द्वारा महात्म्य का चित्रण किया है । तदनन्तर चौथ माता की कथा रूप में देवी दुर्गा की कथा कही है । देवी के नामों—चौथी, अंबा, हरिसिद्धि महामाई, परमेसरी चामुण्डा, ज्वालामुखी, योगिनी, पद्मणी का उल्लेख हुआ है । कवि के अनुसार यह अनेक रूपों वाली देवी धनधान्य देने वाली है । अंबा, पद्मावती, ईश्वरी नामों से जानी जाने वाली इस देवी का स्थान आबू नागौर, पावापुर, गुर्जरधरा है । इनके पूजनीय दिवसों के विषय में कवि लिखता है—

"पांचिम तो परमेसरी, चौदिस पुनिम चंद ।
आठिम नोमि अंबावि तूं, चौथि नमो चामुंड ॥47.

इस प्रकार जैन देवी भक्ति रचनाओं में "चौथ माता जी रो छंद" रचना का भी महत्व है । लोकजीवन में इस रचना द्वारा चौथ माता के व्रत का महत्व स्थापित होता है ।

माताजी री वचनिका—

वचनिका राजस्थानी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है । यह संस्कृत के चंपू काव्य परम्परा से मिलती-जुलती विधा कही जा सकती है जिसमें गद्य-पद्य का मिश्रण होता है । किन्तु राजस्थानी वचनिका मुख्यतः गद्य साहित्य की विधा है जिसमें तुकान्तता को महत्व दिया गया है । राजस्थानी वचनिका साहित्य में उल्लेखनीय तीन रचनाओं में "माताजी री वचनिका" एक है । अन्य दो वचनिका रचनाएं हैं-शिवदास गाडण कृत अचलदास खीची री बचनिका तथा रतन सिंह महेसदासोत विरचित रतनसिह राठौड़ री वचनिका ।

इस कृति का सृजन नागौर के कुचेरा नामक स्थान में वि.सं. 1776 में खरतरगच्छीय जैन यति जयचन्द्र ने किया। इसका मूल आधार भी मार्कण्डेयपुराण में निहित "दुर्गासप्तशती"-आख्यान है । आरंभ में कवि ने देवी भक्ति संबंधी रचनाकारों की परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि बाल्मीकि, वशिष्ठ, जयदेव और मार्कण्डेय जैसे महान विचारक, विद्वान एवं तपस्वी भी जिसकी महिमा को नहीं जान पाये, ऐसी देवी के गुणगान का मैं असफल प्रयास कर रहा हूं । इस निवेदन के उपरान्त कवि ने कालिका के विविध रूपों, चरित्रों और निवास स्थानों का विवरण देते हुए शुंभ-निशुंभ की कथा प्रस्तुत की है ।

गद्य-पद्य में निबद्ध इस वचनिका कृति में कवि ने देवी और राक्षसों के बीच हुए युद्ध का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है । काव्य के अन्त में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की तथा अमानवीय वृत्तियों पर देव गुणों की विजय दिखायी गई है ।

कवि ने इस भक्ति सम्बन्धी रचना में अपने समय का भी वर्णन किया है । यह समय जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह का शासनकाल था । उन्हीं के शासन-प्रबन्ध और स्वयं का परिचय देता हुआ कवि लिखता है—

"संवत सतर छिहंतरे आसु सुदि तिय तीय ।
मुरधर देस कुचोरपुर, रचै ग्रंथ करि पीय ।
मांण दुजोयण भीमजळ, इळ किसना अवतार ।
महाराज अगजीतसिंघ, राज तैण इधकार ।
गच्छ खरतर विद्या गुहिर, अमर आनन्द निधान ।
सिख चत्रभुज जैचंद सरिण, किद्ध वचनिका ज्यांन ।

बुध अनुसार विचार वर, सार धार संसार ।
भुगति छैह लाभै मुगति, पढ़ित्या बोह परिवार ॥"

"माताजी री वचनिका" कवि जयचन्द्र यति की श्रेष्ठ रचना है, जिसमें देवी की पौराणिक सनातन भक्ति के साथ जैन भक्ति का समावेश हुआ है। साथ ही कवि लाधव के साथ काव्य की समस्त विशेषताओं का सुन्दर समन्वय किया है।

इन रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सभी जैन देवी-भक्ति सम्बन्धी रचनाओं की विषयवस्तु देवी दुर्गा के पौराणिक आख्यान मार्कण्डेय पुराण में वर्णित दुर्गा सप्तशती अथवा पूर्ववर्ती कवियों द्वारा निरूपित देवी के स्वरूप से संबद्ध है। अधिकांशतः रचनाओं में देवी के वैष्णव मान्यताओं के अनुरूप चित्रण हुआ है। आरंभ में जैन शैली के अनुसार मंगलाचरण में गुरुवंदना, सरस्वती वंदना, कवि परम्परा आदि का परिचय देते हुए देवी के विविध नामों, उनके अनुसार उनके महत्व, निवास आदि का उल्लेख किया गया है। अन्त में किसी व्रत कथा के दृष्टान्त एवं पुष्पिका देते हुए रचनाओं का अन्त किया है।

इन वर्णनों में देवी के एक हजार आठ नामों से भी अधिक नामों का उल्लेख मिलता है। कुशललाभ की "महामांई दुर्गा सातसी" और "जयचंद यति की" माताजी री वचनिका ऐसी ही रचनाएं हैं।

किन्तु इन रचनाओं में वैष्णवी देवी नामावली के साथ ही जैन देवियों के नामों का तदनुरूप चित्रण हुआ है। तीर्थंकरों की शासन देवियों के रूप में जैन कवियों ने सर्वाधिक रूप से तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती का वर्णन किया है। जैन भक्ति ग्रंथों में पद्मावती को धरणेंद्र की पत्नी कहा गया है। इस संदर्भ में कहा गया है कि गृहस्थाश्रम में जब पार्श्वनाथ ने अपने शत्रु कमठ को तप करते हुए देखा तो उसके चारों ओर यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित थी। प्रज्वलित काष्ठ में एक नाग-नागिन जल रहे थे। जीवहत्या होते देख कर पार्श्वनाथ ने कमठ को उसकी मिथ्याभक्ति पर ललकारा और नाग-दम्पति को नवकारमंत्र द्वारा जीवित किया। यही नाग-नागिन पार्श्वनाथ के आशीर्वचन से धरणेन्द्र और पद्मावती बने।[1] इस घटना की

1. (क) हस्तीमल मेवाड़ी, जैन आगम के अनमोल रत्न।
(ख) कुशललाभकृत 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' एल.डी. इन्स्टी. ग्रं. 975 ला.द.
(ग) कुशललाभकृत स्तम्भ पार्श्वनाथ स्तवनः आनंदकाव्य, महोदधि, मो.—7
(घ) हीरालाल कावडिया का लेख 'पदमावती देवी ते कोण'
—जैन, वर्ष 67, अंक 33-34, 29 अगस्त, 1970

ओर कुशललाभ ने संकेत करते हुए लिखा है—

"संन्यासी काशी तप साधतो, पंचाग्नि परजाळे
दीठो श्री पारस कुमारे पन्नग, अधबळतो ते टाळे
संभळाव्यों श्री नवकार स्वयं मुख इंद्र भुवन अवतार ॥[1]

कीर्तिमेरू, जिनप्रभ सूरि, विनय समुद्र, हेम, लधराज, कान्ह कवि आदि की रचनाओं में पद्मावती संबंधी इस कथा की ओर संकेत मिलते हैं। इसी प्रकार की घटनाएं अंबा, सरस्वती, महाभाई, शारदा आदि जैन देवियों के प्रति भी मिलती है।

सभी जैन कवियों ने अपनी उपास्या देवी के रौद्र, भयानक, कल्याणकारी रूप के साथ ही उसके शृंगारिक रूप का अति मनोरम चित्रण किया है। वस्तुतः यही रागात्मकता है, जो भक्ति का मूल आधार है। कीर्तिमेरू, सुधारू, कुशललाभ, संघविजय, हेम, कान्ह आदि देवीभक्त कवियों द्वारा चित्रित देवी-सौंदर्य उल्लेखनीय हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

सुगुण मंदिर, अतिहिं सुंदर, सिर ससिहर धारिणी।
कानि कुंडल, सून्मण्डल, लील गज गति गामिणी॥

रूप रंभ कि वयण चंद्र कि, नयण पंकज हारिणी।
नयणि अंजन, जनह रंजन, भवह भंजण भामिणी॥"
(कीर्तिमेरू-अंबिका छंद)

"नासा अणीआली अधर प्रवाली, झांक जमाखी वेणवती
जत मीन कपोळी, सेथ रोली, आउ, अमोली, सरधरणी
तिलकेश्वर भाळी, पीअले आली, भूषण भाली, भागवती
कर भुजदंडी, मंडित चंडी, गंभी ज डंडी नाभ भरी
उर उन्नत सारा, कंचुक धारा, विलसत हारा, कृस उदरी
कटि मेषल करणी, हरकिछ हरणी, झंझर चरणी हंस पदा॥
(कवि हेम-पद्मावती छंद, छंद4-5)

इसी सौन्दर्यमयी देवी का रौद्र रूप प्रस्तुत है, जहां महामाई दुर्गा महिषासुर मर्दन के लिये तत्पर है—

"कालिका द्रूअ ब्रह्म मंड कीधा, रोहिर भषण जोगणी रिधा।
गड़गड़इ सिंधु पूरंति ग्राह, अरिही देव अरि दलण आह॥

1. प्रताप शोध प्रतिष्ठान बी.एन. कालेज (उदयपुर ग्रथांक 75-नवकार छंद, छंद 9)

ढालीया देव गुण सयल ढीच, भेड गिद्ध भिड़इ दांणवी भीच ।
ऊससइ षसइ निहसइ अपार, धड़हड़ सूर धगधगइ धार ॥
निहसिया निवड़ वाजानि त्रीठ, रिण माहि रूक बापरह रीठ ॥"
(कुशललाभ : महामाई दुर्गासातसी, छंद 89-91)

जहां इन जैन कवियों ने देव-कल्याण हेतु देवी के वीर, भयानक, रौद्र, वीभत्स रूपों का वर्णन प्रस्तुत किया है, वहां इनकी शैली चारणी (डिंगल) शैली के निकट आ गई है । इन वर्णनों में द्रित्त गुणों की प्रधानता एवं प्रसंगानुकूल वर्णनों का स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है । जयचंद यति की माताजी री वचनिका का चण्डमुण्ड पर देवी द्वारा आक्रमण एवं युद्ध का वर्णन द्रष्टव्य है—

चढै प्रचण्ड चण्ड मुण्ड खंड-खंड खूंदना ।
कसीस त्रीस टंक बांण क्रग झालि कूदता ।
जकन्त जाप रोस जे कठोर काजि काहलां,
करंति देव मेछ कौटि डाको खळां उळां ॥

× × ×

भखै सहूं भुजा लहूं बणै जबांत बाकवां ।
करंति देव मेछ कौटि डाकरे, खळा डळां ॥
मंडे पिलांण कोडियं केकाण मोल ऊचरा ।
करै सनाह कंठ लीधै सार सैन धूंमटा ।
चढ़ै कढै अणी चढे विवाण ढूक बादळां ।
करंति देव मेछ कोटि डाकरे खळां डळां ॥

इस प्रकार जैन देवी-भक्ति सम्बन्धी रचनाएं प्रायः लघु आकार के स्तोत्र हैं । उपलब्ध जैन देवी-भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में कुशललाभकृत "महामाई दुर्गा सातसी" एवं यति जयचंद्र कृत "माताजी री वचनिकाओं का ही आकार अपेक्षाकृत वृहद् हैं । इनमें अन्य लघु रचनाओं की तुलना में गुजराती का प्रभाव कम लक्षित है । साथ ही ये रचनाएं जैन एवं चारणी शैली का समन्वय करती हुई दिखाई देती है । वस्तुतः संपूर्ण जैन संस्कृति ही भारतीय चिंतन पर आधारित है, अतः समन्वय साधना उसका मूल है । यही समन्वय उसका "शम" है । इन जैन देवी-भक्ति-सम्बन्धी रचनाओं में देवी की कल्याण भावना जैन साहित्य को नव आयाम देता है । इनमें चित्रित वीर भावना श्रमण संस्कृति का प्रमुख अंग है । इस प्रकार देवीपरक रचनाओं में जैन एवं जैनेत्तर रचनाओं में कोई तात्विक भेद नही माना जाना चाहिए ।

◆ ◆ ◆

6

स्थूलिभद्र-कथा और तत्सम्बन्धी राजस्थानी रचनाएं

जैन भक्ति-साहित्य में मुनि स्थूलिभद्र का बड़ा महत्व है। आगम-साहित्य में भगवान महावीर और गौतम के पश्चात् तृतीय मंगल के रूप में मुनि स्थूलिभद्र का ही स्मरण किया गया है[1], जिसका प्रमाण है यह श्लोक—

मंगलं भगवानवीरो मंगलम् गौतमः प्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मो स्तु मंगलम् ॥

स्थूलिभद्र को भद्रबाहु का पट्टधर माना जाता है, जिनके विषय में यह कथा प्रचलित है-पाटलीपुत्र नगर में महापद्म नाम का नौवां नन्द राज्य करता था। कल्पक-वंश में उत्पन्न गौतम गौत्रीय ब्राह्मण शकडाल उसका महामंत्री था। मंत्री के दो पुत्र और सात पुत्रियां थीं। बड़े पुत्र का नाम स्थूलिभद्र और दूसरे का श्रीयक था। श्रीयक राजा नन्द का अंगरक्षक एवं विश्वासपात्र था। शकडाल ने स्थूलिभद्र को कला और चातुर्य की शिक्षा के लिये पाटलीपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या कोशा के घर भेज रखा था। जहां वह कोशा के रूप-यौवन में पूर्णतः अनुरक्त हो गया। सातों पुत्रियां भी बड़ी गुणवती थीं।

पाटलीपुत्र का ब्राह्मण वररूचि प्रतिदिन आठ सौ नये-नये श्लोकों से नन्द राजा की स्तुति करता था। वररुचि के श्लोकों की प्रशंसात्मक दृष्टि राजा मंत्री पर डालता किन्तु शकडाल की उदासीनता देखकर राजा उसे कोई दान नहीं देता। एक दिन वररुचि फल-फूल आदि के साथ शकडाल की पत्नी के पास पहुंचा और अपनी सारी कथा उसे कह सुनाई। पत्नी के अनुग्रह पर अब शकडाल ने वररुचि के श्लोकों को

1. सं. मुनि हस्तीमल मेवाड़ी - आगम के अनमोल रत्न, पृ. 386

झूठी प्रशंसा करना आरम्भ किया जिससे उसे प्रतिदिन आठ सौ दीनारें मिलने लगीं। पर इस प्रकार दान देने से राजकोष के शीघ्र समाप्त होने की सम्भावना थी। अतः शकडाल ने राजा को कहा कि वररुचि लौकिक श्लोक पड़ता है, जिन्हे उसकी लड़कियां भी जानती हैं।

इस सत्य की जांच के लिए राज-सभा बुलाई गई। मंत्री की सातों कन्याएं परदे के पीछे बैठी हुई थीं। वररुचि ने श्लोक आरम्भ किया और कन्याओं ने उन्हें ज्यों का त्यों राज-सभा में सुना दिया। अपने काव्य को पुराना प्रमाणित देखकर वररुचि तड़पता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। तिरस्कार के कारण अब वररुचि का अभिमान बढ़ गया था। अतः उसने अपने महत्व को जताने के लिये नयी युक्ति सोची। वह रात को गंगा में दीनारें छिपाकर दूसरे दिन प्रातः काल आकर गंगा की स्तुति करता और लातें मारकर गंगा में से दीनारें निकाल लेता। जब इस घटना को राजा ने सुना तो उसने शकडाल को भी इसकी सूचना दी। शकडाल ने कहा यदि मेरे सामने गंगा उसे कुछ दे तो जानूं।

अगले दिन इस घटना की परीक्षा के लिये शकडाल ने गंगा-तट पर एक आदमी को छिपाकर बिठा दिया। उस आदमी ने वररुचि द्वारा छिपाई गई पोटली लाकर शकडाल को दे दी। वररुचि प्रतिदिन की भांति गंगा मैया की स्तुति कर पोटली ढूंढने लगा। पर पोटली वहां नहीं मिली। इसी समय शकडाल ने राजा को वह पोटली दिखाई। पोटली देखकर वररुचि लज्जित होकर वहां से चला गया।

तिरस्कार की अग्नि वररुचि में निरन्तर बढ़ती रही। उसने शकडाल की दासी से मित्रता बढ़ाकर श्रीयक के विवाह के समय एक षड़यंत्र रचा। उसने राजा से कहा कि शकडाल उन्हें मारकर अपने पुत्र को राजा बनाना चाहता है। इस घटना को सुनकर राजा ने भी मंत्री के समस्त सम्बन्धियों का वध कर देने की योजना बनाई। यहां तक कि एक दिन शकडाल जब राजा के पैर छूने आया तो राजा ने क्रोध से अपना मुंह फेर लिया, और उसके प्रति अत्यन्त उपेक्षा दिखलाई। इस वातावरण ने शकडाल को बड़ा दुखी किया। उसने अपने पुत्र श्रीयक को सारे हाल सुनाकर उसके वध का निवेदन किया। परन्तु श्रीयक ने उसे अस्वीकार कर दिया। अन्त में बहुत कहने पर शकडाल द्वारा तालपुर विष खाकर राजा के समक्ष उसके वध की बात पर वह (श्रीयक) राजी हो गया।

श्रीयक के हाथों शकडाल का वध देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य एवं शोक हुआ। किन्तु उसकी स्वामिभक्ति को जानकर वह प्रसन्न भी हुआ। उसने उसे मंत्री-पद

स्वीकार कर लेने का आग्रह किया। पर उसने उसे अस्वीकृत करते हुए अपने बड़े भाई स्थूलिभद्र को जो 12 वर्षों से कोशा गणिका के पास रह रहा था को बुलवाकर मंत्री बनाने का आग्रह किया। राजा का आमन्त्रण प्राप्त कर जब स्थूलिभद्र राजसभा में पहुंचा तो उसे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि उसके पिता वररुचि के षड़यंत्र के शिकार हो गये। वह पश्चाताप करने लगा कि वेश्या के प्रेम में पड़े रहने के कारण उसे पिता की मृत्यु का समाचार भी प्राप्त नहीं हो सका। अब वह इस संसार से उदासीन हो गया और मंत्री-पद की अपेक्षा साधु-धर्म स्वीकारना उसे उचित लगा। उसने संभूति विजय के पास पहुंचकर मुनित्व ग्रहण किया।

वररुचि कोशा की छोटी बहन उपकोशा से प्रेम करता था। अतः श्रीयक भी अब वररुचि से बदला लेने की भावना से वहां जाने लगा। श्रीयक से अपने प्रियतम स्थूलीभद्र के संन्यास लेने एवं स्थूलिभद्र के पिता की हत्या का हाल सुनकर कोशा का हृदय संतप्त हो गया। ईर्ष्या एवं वियोग की अग्नि में प्रज्वलित होकर श्रीयक की राय के अनुसार उसने अपनी बहन उपकोशा को वररुचि को सुरापान करवाने की सलाह दी। उपकोशा के प्रगाढ़ अनुनय पर एक दिन वररुचि ने चंद्रप्रभा नामक सुरा का पान कर ही लिया। उसे इसका ऐसा चस्का लगा कि अब वह उसका पान सदैव करने लगा।

एक दिन नंद श्रीयक के पास बैठा हुआ उसके पिता शकडाल की प्रशंसा कर रहा था। तभी श्रीयक ने राजा को बताया कि शराबी वररुचि ने निर्दोष शकडाल की हत्या करवा दी। वररूचि के शराबीपन की बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ और उसने इस बात की परीक्षा की, जिसमें उसका शराब पीना प्रमाणित हो गया। राजा ने उसे गर्म-गर्म गंधक जल पिलवा कर मरवा डाला।

वर्षाकाल के आगमन पर शिष्यों ने विभिन्न स्थलों पर जाकर चातुर्मास करने की आज्ञा आचार्य संभूति से मांगी। आचार्य ने सभी शिष्यों को उनकी इच्छानुकूल स्थानों एवं विधि से चातुर्मास बिताने की आज्ञा दे दी। मुनि स्थूलिभद्र को भी उनकी अपेक्षानुसार उनकी पूर्व परिचिता सुन्दरी नायिका कोशा की चित्रशाला में षड्रस युक्त भोजन करते हुए चातुर्मास करने की आज्ञा मिल गई।

मुनिवेश में आए स्थूलिभद्र को देखकर कोशा बड़ी दुःखी हुई। पर चार माह तक साथ रहने की कल्पना ने उसे संतोष भी दिया, कोशा की साक्षात् कामदेव की मधुशाला के समान सुसज्जित चित्रशाला में स्थूलिभद्र ने अपना चातुर्मास आरम्भ किया। कोशा नाना चेष्टाओं से उनकी तपस्या भंग करना चाहती पर वह तनिक भी

विचलित नहीं होते। वे सदैव उसे काम-भोग के कटु फल का ही उपदेश देने लगते। इन उपदेशों से कोशा को उसके भोगासक्त जीवन के प्रति घृणा होने लगी। उसने (कोशा ने) महान् अनुताप करना आरम्भ किया। उसने मुनि से विनयपूर्वक क्षमा मांगी तथा सम्यकत्व और बारह व्रत अंगीकार कर श्राविका बन गई। उसने निर्णय कर लिया कि अब वह राजा के हुक्म से आए हुए पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी से शरीर-सम्बन्ध नहीं करेगी।

चातुर्मास की समाप्ति पर मुनि स्थूलिभद्र ने वहां से विहार किया। तभी राजा ने कोशा के पास एक रथिक को भेजा जो बाण-संधान विद्या में बड़ा निपुण था। कोशा की चित्रशाला के गवाक्ष में बैठकर उसने अपने बाणों का संधान आरम्भ किया और उनके सहारे दूर के आम्रवृक्ष की फल सहित डालियों को तोड़-तोड़ कर कोशा के घर तक खींच लिया। कोशा ने भी सरसों के ढेर पर सुई की नोक पर खड़े होकर सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किया, जिसे देखकर रथिक चकित हो गया और उसकी प्रशंसा करने लगा। तब कोशा ने कहा कि हम दोनों के ही कार्य अनोखे नहीं है। अनोखा कार्य तो स्थूलिभद्र की तप-साधना है जो इस चित्रशाला के प्रभाव से भी द्रवित नहीं हो सकी।

वर्षाकाल की समाप्ति पर जब स्थूलिभद्र गुरु के पास लौटे तो उन्हें आते देख कर गुरु स्वागत के लिये उनके पास पहुंचे। स्थूलिभद्र के गुरु द्वारा किए जा रहे सत्कार को देखकर अन्य शिष्य ईर्ष्या की अग्नि में जल उठे। दूसरे वर्ष जब चातुर्मास आया तो इन्हीं में से एक शिष्य ने कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास करने की अनुमति मांगी। गुरु ने उसे बहुत समझाया पर वह तनिक भी नहीं माना और कोशा के घर चला गया। प्रथम रात्रि को ही वह विचलित हो उठा और कोशा से भोग की इच्छा प्रकट करने लगा। कोशा ने उसके व्रत-भंग को बचाने के लिए नेपाल के राजा के पास जाकर रत्न-कंबल लाने को कहा। मुनि काम की पूर्ति के निमित्त मार्ग की कठिनाइयों को सहन करता हुआ भी रत्नजटित कम्बल लाया।

आरम्भ में तो कोशा ने उसके साहस की सराहना की किन्तु दूसरे ही क्षण, उसने अपना रुख बदला, मुनि के प्रति अत्यन्त उपेक्षा दिखाते हुए उसने कम्बल से अपने गन्दे पैर पौंछ कर उसे गंदे पानी में डाल दिया। यह सब देखकर मुनि अत्यन्त क्रोधित हुए। तब कोशा ने उसे प्रतिबोधित किया कि काम-वासना की क्षणिक तृप्ति के लिये ब्रह्मचर्य का भंग क्या अनमोल ब्रह्मचर्य रत्न को गंदी नाली में डालना नहीं है। कोशा के इन शब्दों को सुनकर मुनि ने संयमव्रत ग्रहण किया। वह कोशा के

निर्देशानुसार आचार्य स्थूलिभद्र के पास पहुंचा और उनसे क्षमा-याचना की। अपने दुष्कृत्य की निन्दा करते हुए प्रायश्चित कर उसने स्वयं को शुद्ध किया।

इसी आगम-प्रचलित कथा को मध्यकालीन विभिन्न जैन-कवियों एवं साधुओं ने ग्रहण कर अनेक सरस ग्रन्थों का प्रणयन किया। कुछ कवियों ने इस कथा पर प्रबन्ध रचे तो कुछ एक ने लघु फाग तो शेष ने फुटकर कवित्त ही।इन सभी कवियों ने उक्त कथ्य को ज्यों-का त्यों ही ग्रहण नहीं किया अपितु अनेक ने उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लिये। अधिकांश कवियों ने राजा नन्द के मंत्री शकडाल के पुत्र स्थूलिभद्र के वैराग्य को ही अपनी रचना की विषय वस्तु बनाया है। शकडाल वररुचि और रथिक का कथावृत्त का वर्णन दो तीन कृतियों में हुआ है। मध्यकाल तक (विशेषतः 18 वीं शताब्दी तक) रचित स्थूलिभद्र से सम्बन्धित निम्नलिखित कृतियां मिलती हैं—

क्र.सं.	ग्रंथ का नाम	रचयिता	लिपिकर्ता	र. का. (वि. सं.)	लि. काल (वि. सं.)
1.	स्थूलिभद्र कथा	—	—	—	—
2.	स्थूलिभद्र फाग	जिनपद्म सूरि	—	1390	—
3.	स्थूलिभद्र फाग	हलराज	—	1409	—
4.	स्थूलिभद्र बारमासा	हीरानंद सूरि	—	1465	—
5.	स्थूलिभद्र कवित्त	सोमसुंदर सूरि	—	1481	—
6.	स्थूलिभद्र काक	देपाल	—	1491	—
7.	स्थूलिभद्र छंद	मेरुनन्दन	—	15वीं शती	—

1. कुमार पाल प्रतिबोध - सोमप्रभाचार्य, पृ. 443-461
2. रास एवं रासान्वयी काव्य - सं. दशरथ शर्मा एवं दशरथ ओझा, पृ. 138-143
3. स्वाध्याय - अंक 3, पुष्प 8 (श्री कनुभाई व्रजलाल शेठ का लेख - अद्यावत अप्रसिद्ध कवि हलराजकृत स्थूलिभद्र फागु)।
4. गुर्जर कविओ, भाग 3 - मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ. 439
5. वही, पृ. 438
6. स्थूलिभद्र काकादि-प्रकाशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ. 1-6
7. सं. अगरचन्द भंवरलाल नाहटा - मणिधारी श्री जिनचन्द सूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रंथ, द्वितीय खण्ड पृ. 61

8.	स्थूलिभद्र फाग	जगमल	—	16वीं शती	—
9.	स्थूलिभद्र अट्ठावीसऊ	पद्मसागर	—	1530	—
10.	स्थूलिभद्र एकवीसो	लावण्यसमय	—	1533	—
11.	स्थूलिभद्र बासठीओ	जयवल्लभ	—	—	—
12.	स्थूलिभद्र गुण रत्नाकर छन्द	सहजसुंदर	—	1572	—
13.	स्थूलिभद्र मदन युद्ध	गोवर्धन	—	1604	—
14.	स्थूलिभद्र कोशा प्रेम विलास फाग	जयवन्तसूरि	—	16वीं शती	—
15.	स्थूलिभद्र मोहन वेली	जयवन्तसूरि	—	1644	—
16.	स्थूलिभद्र छत्तीसी	वा. कुशललाभ	—	—	—
17.	स्थूलिभद्र (फाग) धमालि चौपई	मालदेव	—	—	—
18.	स्थूलिभद्र स्वाध्याय	आणंदसोम	—	1622	—
19.	स्थूलिभद्र रास	समयसुंदर	—	1622	—

---

8. (क) सं. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन गुर्जर कविओ, भाग-1, पृ. 38-39
(ख) कवियों के काल के अनुसार रचनाओं का लगभग रचनाकाल निकालकर क्रमको बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिये अनेक स्थलों पर शती का प्रयोग किया गया है।
9. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर - ह. ग्रं. 2700-27136
10. जैन गुर्जर कविओ, भाग-1, पृ. 225
11. वही, पृ. 517-518
12. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर - ग्र. 27245
13. जैन गुर्जर कविओ, भाग-3, पृ. 653
14. वही, पृ. 671-672
15. वही, पृ. 671
16. श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर
17. प्राचीन फागु संग्रह
18. जैन गुर्जर कविओ, भाग-1, पृ. 225
19. जैन गुर्जर कविओ, भाग-3, पृ. 844

20.	स्थूलिभद्र रास	रंगकुशल	—	1644	—
21.	स्थूलिभद्र रास	समयसुंदरोपाध्याय	—	17वीं शती	—
22.	स्थूलिभद्र रास	ऋषभदास	—	1668	—
23.	स्थूलिभद्र गीत	समयसुंदर	—	1889	—
24.	स्थूलिभद्र चौपाई (रास)	साधुकीर्ति	—	17वीं शती	—
25.	स्थूलिभद्र कोश्याभास	नयसुंदर	—	—	—
26.	स्थूलिभद्र रास	उदयरत्न	—	—	—
27.	स्थूलिभद्र रास	जिनहर्ष	—	—	—
28.	स्थूलिभद्र चौपई	चरित्रसुंदर	—	1824	—
29.	स्थूलिभद्र शीयल वेली	वीरविजय	—	1862	—
30.	स्थूलिभद्र सज्झाय	देवकुमारी	—	—	—
31.	स्थूलिभद्र रास	तुहंलराज	—	—	—
32.	स्थूलिभद्र ऋषीश्वर कथा	—	—	—	—

---

20. मणिधारी श्री जि. चं., सूरि अ. श. स्मृति ग्रंथ - संपादक अगरचंद नाहटा, पृ. 61
21. वही
22. जैन गुर्जर कविओ, भाग-1, पृ. 415
23. वही, पृ. 388
24. जैन गुर्जर कविओ, भाग-3, पृ. 700
25. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 2023
26. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 29755, 29682
27. मणि श्री जि. चं. सूरि, अ. श. स्मृति ग्रंथ, द्वितीय खण्ड, पृ. 61
28. जयचन्द भण्डार, बीकानेर
29. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 27358
30. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 3550(14)
31. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 34062(1)
32. वही, ग्रंथ 29029

33.	स्थूलिभद्र चरित सरणार्थ	—	—	—	—
34.	स्थूलिभद्र बारमासादि (राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथ 32714)	—	—	—	—
35.	स्थूलिभद्र फाग (जैन गुर्जर कविओ, भाग 3, पृ. 412)	रत्नवल्लभ	—	—	—

इस प्रकार विक्रम की 12 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी तक स्थूलिभद्र से सम्बन्धित अद्यावधि रचनाएं उपलब्ध हो गई हैं। भाषा की दृष्टि से इनकी भाषा प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषा ही है। इन सभी कृतियों पर तत्कालीन प्रचलित भाषाओं एवं उनकी रूप-रचना का पूर्ण प्रभाव है। अतः भाषा एवं जैन संस्कृति की दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्व कहा जा सकता है।

♦ ♦ ♦

33. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथ 2509

7

राजस्थानी की प्रमुख जैन काव्यशास्त्रीय रचनाएं

राजस्थानी साहित्य समृद्ध भाषा है। इसमें 10 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही विविध विधाओं में साहित्य लिखा जाता रहा है। इन्हीं विधाओं में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक परम्परा है—लक्षण ग्रन्थों अथवा काव्यशास्त्रीय रचनाओं के सृजन की। यद्यपि इस परम्परा का उद्गम भारतीय वाङ्मय में संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों से माना जाता है किन्तु विकासात्मक दृष्टि से राजस्थानी लक्षण ग्रन्थों के लेखन की परम्परा को प्राकृत और अपभ्रंश की काव्यशास्त्रीय अवधारणाओं से मानना उचित होगा। राजस्थानी काव्यशास्त्रीय रचनाओं में विवेचित अनेक छन्दों का ब्यौरा हम गाहा सतसई, प्राकृत पैंगलम्, भविसयतकहा, छन्दानुशासन, छंदकोश आदि प्राकृत-अपभ्रंश लक्षण रचनाओं के विवेचन के निकट पाते हैं। इसके दो कारण संभव है—प्रथम, राजस्थानी का प्राकृत एवं अपभ्रंश से विकसित होना, तथा द्वितीय, प्राकृत-अपभ्रंश के अधिकांश लक्षण-ग्रंथ कर्ताओं का जैन होना।इन्हीं दो प्रवृत्तियों से राजस्थानी जैन काव्यशास्त्रियों ने प्रेरणा लेकर लक्षण-ग्रंथों का निर्माण किया। संभवतः इसी प्रभाव से राजस्थानी जैन काव्यशास्त्रियों की रचनाओं में रस, ध्वनि, नायिका-भेदों की अपेक्षा छन्द एवं उनके प्रस्तार आदि से सम्बन्धित अधिक लक्षण ग्रंथ लिखे गये।

इन काव्याशास्त्रियों ने नाममालाएं भी लिखीं, जिनकी परम्परा पाइअनाम-लच्छीमाला से जोड़ी जा सकती है। जैनियों की यहीं परंपरा यहां के जैनेत्तर काव्यशास्त्रियों के लक्षण-ग्रंथों में भी मिलती है। काव्यशास्त्रीय रचनाओं के साथ नाममालाओं के संकलन एवं विवेचन के विषय में जैन अथवा जैनेत्तर किसी काव्यशास्त्री ने कोई ठोस तर्क या संकेत नहीं किया। इस संदर्भ में हमारी यही संभावना है कि शब्द-शक्तियों के माध्यम से काव्य का अर्थ निश्चित किया जाता है, अतः नाममालाओं

(कोशपरक साहित्य) को भी राजस्थानी आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय विषय-वस्तु के रूप में विवेचित किया।

राजस्थानी साहित्य में लक्षण ग्रंथों की परम्परा का इतिवृत्त जानने पर यह स्पष्ट होता हैं कि जैसलमेर के रावल हरराज के आश्रित एवं गुरु खरतरगच्छीय वाचक कुशललाभ द्वारा यहां लक्षण ग्रन्थों का लेखन आरम्भ हुआ। इस दृष्टि से राजस्थानी काव्यशास्त्र के इतिहास में राजस्थानी जैन काव्यशास्त्रियों द्वारा लिखित रचनाओं का विशिष्ट महत्व हैं। कुशललाभ राजस्थानी का ही नहीं हिन्दी का भी प्रथम काव्यशास्त्री है। इसके अतिरिक्त अन्य जैन राजस्थानी काव्यशास्त्रियों में उल्लेखनीय नाम हैं-सहजसुंदर, उत्तमचंद भंडारी, उदयचंद भंडारी का। इनकी महत्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय रचनाओं का विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

पिंगल शिरोमणि–

कुशललाभ ने पिंगल शिरोमणि की रचना वि.सं. 1635 की श्रावण शुक्ला नवमी, रविवाव को पूर्ण की। इसके प्रथम प्रकाश से चतुर्थ प्रकाश तक 104 प्रकार के मांत्रिक, वर्णिक, संकर छंदों का भेदोपभेद सहित विवेचन हुआ है। गाहा, दूहा, सोरठा, छप्पय छंदों का विशद विवेचन किया गया है। पांचवे प्रकाश (अध्याय) में कुशललाभ ने काव्यशास्त्र में प्रचलित प्रस्तार विधि का कथन किया है। छन्द-विवेचन के उपरान्त छठे प्रकाश में कवि ने 75 प्रकार के अलंकारों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत किया है। लेखा, अनुज्ञा, अवज्ञा को एक ही अलंकार बताकर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इसी प्रकार कुशललाभ ने काव्यशास्त्र की एक अनूठी, नवीन परम्परा "सासोतरा कथन" से भी अवगत कराया है।

पिंगल-शिरोमणि का सातवां अध्याय "उडिंगल नाममाला हैं। इसमें कवि ने 32 नामों के विविध पर्याय प्रस्तुत किये हैं। पिंगल शिरोमणि का अन्तिम अध्याय "गीत प्रकरण" नाम से है। इसमें डिंगल गीतों की परम्परा बताते हुए चालीस प्रकार के विविध गीतों के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। कवि ने सम्पूर्ण विषय-वस्तु को समझाने के लिये अनेक कथाओं विशेषकर रामकथा का सहारा लिया है। पिंगल शिरोमणि की सम्पूर्ण विषय वस्तु को निम्नलिखित चार अध्यायों में व्यवस्थित किया जा सकता है—

अध्याय 1 : छंद निरूपण
अध्याय 2 : अलंकार निरूपण

अध्याय 3 : उडिंगल नाममाला, और
अध्याय 4 : गीत प्रकरण।[1]

अलंकार आशय–

जोधपुर निवासी उत्तमचंद भंडारी[2] की रचना "अलंकार आशय" का राजस्थानी काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। कवि ने इसकी रचना नागौर में वि.सं. 1857 में की। इसकी एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत है।[3] प्रति का लिपिकाल 19 वीं शताब्दी लिखा हुआ है। सम्पूर्ण रचना 146 पत्रों में प्रतिलिपित है, पर अंतिम पत्र अनुपलब्ध है। ग्रंथ के आरंभ में कवि ने अपने गुरु रूप में मुनि सागरचंद एवं कवि रामकरण का स्मरण करते हुए विविध शब्दालंकार और अर्थालंकारों का सोदाहरण विवेचन किया है। विवेचन में राजस्थानी के साथ ब्रजभाषा के अनेक सुन्दर प्रयोग दर्शनीय हैं। प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत के सुंदर प्रयोगों ने भी आलोच्य ग्रंथ के शास्त्रीयत्व को द्विगुणित किया है।

साहित्यसार–

इसके रचयिता उत्तमचंद भंडारी के अनुज और काव्यशिष्य उदयचंद भंडारी है। उदयचंद भंडारी ने अपने अग्रज उत्तमचंद भंडारी के सानिध्य में छन्दप्रबन्ध[4], छन्दविभूषण[5], प्रस्तार-प्रबन्ध भाषा[6], शब्दार्थ—चन्द्रिका[7] नामरत्नमाला[8], रसनिवास[9], आदि काव्यशास्त्रीय रचनाओं का निर्माण किया। "साहित्य सार" इन्हीं रचनाओं में से शब्दार्थ चंद्रिका, दूषणदर्पण, रस निवास, छंद विभूषण का संग्रह है। कवि ने यह

---

1. डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर - कुशललाभ : व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व, पृ. 98
2. कवि का अन्य लक्षण ग्रंथ है - छंदप्रकाश संवार्ता
3. ग्रंथांक 15089 - संग्रह राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
4. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, हस्तलिखित ग्रंथ संख्या 13780(1) रचनाकाल वि. सं. 1864 नागौर में
5. वही, ग्रं. 13780, रचनाकाल वि. सं. 1875
6. वही, ग्रं. 13780 (2), रचनाकाल वि. सं. 1879
7. वही, ग्रं. 13780, रचनाकाल वि. सं. 1890
8. वही, ग्रं. 13780(1), रचनाकाल वि. सं. 1899
9. वही, ग्रं. 13780

संग्रह जोधपुर में महाराजा मानसिंह के आश्रय में वि.सं. 1890 में किया। इन सबका खुलासा कवि ने ग्रंथ के आरंभिक चार दूहों में किया है।[1]

ग्रंथ की प्राप्त हस्तलिखित प्रति बड़े गुटका आकार में है।[2] आलोच्य रचना काल की विषय वस्तु 103 पत्रों में लिपिबबद्ध है। कवि ने ग्रंथ की पूर्वपीठिका के रूप में कवि, कुकवि, दग्ध, अदग्धाक्षर, शब्द की उपयुक्तता, बुध, कुबुध व्यक्ति द्वारा काव्य के प्रति न्याय आदि की चर्चा की हैं। इसके उपरान्त काव्यत्व, साहित्यसार नामकरण, काव्य-दोष, काव्य में विभक्तियों, उपसर्गों के प्रयोग आदि की व्याख्या करते हुए शब्दशक्तियों के सोदाहरण भेदोपभेदों की विस्तार से चर्चा की है। विवक्षित वाच्य ध्वनि का लक्षण देते हुए कवि ने कहा है—

होत विवच्छित वाच्य ध्वनि अविधा सौ द्वै जान।
असंलक्षक्रम क्रम रहित संलक्षकक्रमवान॥

कवि ने शब्द शक्तियों को चित्र-यंत्र द्वारा भी स्पष्ट किया है। "साहित्य-सार" ग्रंथ की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

साहित सिंधु अथाह को थाह गहन जो सार।
सुद्ध सुगम संपूर्ण मत रच्यौ सुकर निरधार॥
असमजते भासै कहूं अर्थ असुधता भाय।
किये विचार असुद्ध नहिं है यहां इष्ट सहाय।
किय प्रसंस दिगविजय जब जावनै षंडहि लोय।
षड सके कोउन कवि उचत प्रसंसा सोच॥

प्रारंभिक अंश का शीर्षक साहित्यसार होने के तत्संबंधी अन्य प्रकरणों को भी कवि ने इसी शीर्षक में समाहित कर लिया है। वस्तुतः यह रचना उक्त चारों कृति

---

1. सुमर गनेसरु सारदा, इष्ट सकल सुषधांम।
लै सहाय ग्रंथ सु लिखौ सहित सार सुनांम॥1॥
शब्दसिद्ध व्याकरण ते अर्थ सिद्ध साहित्य।
सप्रयोजन अर्थ सुं लिखौ सहित नौ तन कृत्य॥2॥
प्रकरण च्यार लिख्यां जुदे अपने अपने नांम।
साहित सार सुं एकठा लिख्या नांम अभिरांम॥3॥
इस शब्दारथ चंद्र का दूषन दर्पण दोय।
रस निवास त्रय चतुरथ सुछंद विभूषन जोय॥4॥
2. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. लि. ग्रं. 13780(3)

की टीका है। इसीलिये उदयचंद भंडारी ने इसे साहित्यसार भाषा टीका भी कहा है। राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा की यह अत्यन्त सुन्दर काव्यशास्त्रीय रचना है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी जैन कवियों ने अपनी परम्परा के अनुसार चरित काव्य ही अधिक रचे किन्तु काव्य की समीक्षार्थ लक्षणों के निर्माणक मूल्यों की स्थापना हेतु उन्होंने तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों का भी निर्माण किया। इन जैन लक्षण ग्रन्थों में संस्कृत आचार्यों की सी गूढता की अपेक्षा सहजता एवं ग्राह्यता अधिक है। वैसे भाषा राजस्थानी है किन्तु परवर्ती लक्षण विवेचक रचनाओं में ब्रज अथवा राजस्थानी के पिंगल रूप का प्रभाव अधिक लक्षित है।

♦♦♦

8

नागौर जनपद के प्रमुख जैन कवि और उनकी रचनाओं में चित्रित ऐतिहासिक संदर्भ

राजस्थान भारतवर्ष का एक सांस्कृतिक प्रदेश है। यहां के प्रत्येक नगर और गांव से कोई न कोई इतिहास अवश्य जुड़ा हुआ है। राजस्थान का नागौर भी ऐसा ही एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक जनपद है, जिसे प्राचीनकाल में सपादलक्ष, अहिच्छत्रपुर (अहिपुर), नागहृद, भुजंगपुर, नागपुर, नागपट्टन, शेषपुर आदि नामों से जाना जाता रहा है।[1] कर्नल जेम्स टॉड ने इसका नाम नागदुर्ग बतलाया है[2] तथा जैन साहित्य में इसका उल्लेख-नागउर के रूप में हुआ है।[3] यह शब्द रुप नागौर पद के अधिक निकट लगता है। 700 वर्ष प्राचीन तवारीखों में भी नागोर शब्द का ही प्रयोग हुआ है।

वस्तुतः इतिहासकारों द्वारा निर्दिष्ट जांगल प्रदेश की यह नगर (नागोर-अहिच्छत्रपुर) राजधानी था।[4] इस पर चौहानों का शासन था। दिल्ली-सिंध के राजमार्ग पर स्थित होने के कारण यह एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र भी था। अतः इस क्षेत्र पर राजनीतिक उतार-चढ़ाव आने स्वाभाविक थे। इसीलिये नागौर पर चौहानों के बाद मुहम्मद बहलीम तथा दिल्ली के अन्य मुसलमान शासकों का शासन रहा। अन्ततः यह राव अमरसिंह राठौड के अधीन वि.सं. 1696 में हुआ।[5] राठौड़ों के

1. गौ. ही. ओझा - जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 329
2. पश्चिमी भारत की यात्रा (हिन्दी अनु.), राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
3. जे. एस. पी. 12, पृ. 102 (नागौर चैत्य परिपाटी)
4. गौ. ही. ओझा - बीकानेर राज्य का इतिहास, खंड-2, पृ. 1-2
5. जगदीशसिंह गहलोत - मारवाड़ राज्य का इतिहास

शासनकाल तक नागौर जनपद की सीमा नागौर, जायल, लाडनूं, डीडवाना, मेड़ता, डेगाना, पर्वतसर, नावां, मकराना, कुचामन से सम्बद्ध थी।

नागौर के सम्पूर्ण इतिहास के परिप्रेक्ष्य से स्पष्ट होता है कि नागौर एक सांस्कृतिक जनपद था। यहां साहित्य की एक उज्ज्वल परम्परा विकसित थी। जैन धर्म की भट्टारक परम्परा का यहां पूर्ण विकास हुआ।[1] भट्टारक धर्मकीर्ति (वि.सं.1590), भट्टारक यशकीर्ति (वि.सं.1672), भट्टारक भानुकीर्ति (वि.सं.1690), भट्टारक श्रीभूषण (वि.सं.1705), भट्टारक धर्मचन्द (वि.सं.1712) आदि नागौर की भट्टारक परम्परा के आलोक स्तंभ हैं। भट्टारक और चेत्यालय परम्परा के अंतर्गत ही यहां अनेक मंदिरों, उपासरों, का निर्माण करवाया गया।[2] युगप्रधान जिनचन्द्र लाहौर जाते हुए नागौर में रुके।[3] यहां जैन धर्म का इतना अधिक प्रचार-प्रसार रहा कि जैन संप्रदाय के 84 गच्छों में से तपागच्छ की नागौरीय तपागच्छीय शाखा ने वि.सं. 1174 से अपनी पहचान बना ली। 15 वीं शताब्दी में "लोरिकागच्छ" ने भी अपना विकास यहीं किया। वर्तमान में लाडनूं में स्थापित जैन विद्या अध्ययन संस्थान (डीम्ड यूनिवर्सिटी) भी इसी विकास यात्रा का उत्कर्ष है।

इस पृष्ठभूमि से स्वतः सिद्ध होता है कि नागौर जनपद में जैन साहित्य सर्जन की सुदीर्घकालीन परम्परा रही है। जैन यतियों, साधुओं ने यहां संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी में अच्छी रचनाएं लिखीं। इन्हीं में से कतिपय उल्लेखनीय राजस्थानी जैन रचनाकारों और उनकी कृतियों में यथा-प्रसंग वर्णित ऐतिहासिक प्रसंगों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

1. मल्लधारी हेमचंद–

अभयदेव के शिष्य मल्लधारी हेमचंद्र ने वि.सं. 1180 में मेड़ता और छत्रपल्ली में रह कर अपनी प्रसिद्ध कृति "भवभावना" का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त अनुयोगद्वार, जीवसमासशतक जैसी जैन धर्म की अनिवार्य रचनाओं की भी आपने विस्तृत व्याख्याएं कीं। मल्लधारी हेमचंद्र ने एक विशाल संघ के साथ शत्रुंजय और गिरनार की यात्रा की थी।

---

1. डॉ. बी. पी. जोहारपुरकर - भट्टारक संप्रदाय, पृ. 124-25
2. जे. एस. पी. 12, पृ. 102
3. सं. म. विनयसागर - खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खण्ड

2. हीरकलश—

हीरकलश खरतरगच्छीय हर्षप्रभ के शिष्य थे। ये नागौर मण्डल में काफी समय तक रहे। यहीं रहकर कवि ने जोइसहीर (ज्योतिष सार)[1], सात व्यसन गीत (वि.सं. 1622)[2], आराधना चौपई (वि.सं. 1623)[3], सिंघासन बत्तीसी (वि.सं. 1636, मेड़ता)[4], शुद्ध समकित गीत[5] आदि रचनाओं का निर्माण किया। जोइसहीर (वि.सं. 1621) कवि की एक महत्वपूर्ण रचना है। यह मूलतः प्राकृत भाषा की रचना है। हीरकलश ने इसका राजस्थानी रूपान्तर 905 पद्यों में वि.सं. 1657 में पूरा किया। साराभाई नवाब, अहमदाबाद की ओर से यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। हीरकलश के शिष्य हेमचंद्र थे। इन्होंने भी अनेक अच्छी काव्य रचनाये कीं।

3. हर्षकीर्ति—

नागौरी तपागच्छ शाखा के आचार्य चन्द्रकीर्ति के ये शिष्य थे। हर्ष कीर्ति की रचनाओं और समकालीन घटनाओं के आधार पर इनका समय 16 वीं शताब्दी का अन्तिम एवं 17 वीं शताब्दी का प्रथम चरण सिद्ध होता है। कवि ने अपनी रचनाएं संस्कृत और राजस्थानी में लिखीं। इनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं—धातुपाठ, धातुतरंगिणी, सारस्वत दीपिका, वृहतशान्ति स्तोत्र टीका (वि.सं. 1655), जन्मपत्री पद्धति (वि.सं. 1660), सेट्अनिटकारिका (वि.स. 1662), शारदीय नाममाला, सिंदूरप्रकरण टीका, कल्याणमंदिर टीका आदि।

हर्षकीर्ति की "धातुतरंगिणी" नामक कृति में तत्कालीन नागौर के इतिहास की झलक मिलती है। कवि ने अपनी भट्टारक परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि यति पद्ममेरू के शिष्य पद्मसुंदर गणि द्वारा अकबर की सभा में किसी पंडित को पराजित कर पद्मसुंदर को सम्मानित किया गया। स्वयं हर्षकीर्ति को जोधपुर के राजा राव मालदेव से सम्मान मिला।[6]

---

1. साहित्य संस्थान, उदयपुर - शोध पत्रिका, भाग-7, अंक-4
2. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. ग्रं. 2893(36), पत्र 70वां
3. साहित्य संस्थान उदयपुर, शोध पत्रिका, भाग-7, अंक-4
4. वही
5. रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ह. ग्रं. 2893(26), पत्र 60वां
6. डॉ. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर - जैन आयुर्वेद का इतिहास, पृ. 118 (प्र.सं.)

4. समयसुंदर—

समयसुंदर ने यथा-प्रसंग अपनी रचनाओं में अपना सामान्य परिचय देने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार वे सांचोर में जन्मे थे।[1] वे खरतरगच्छीय युग प्रधान जिनचंद्र सूरि के मुख्य शिष्य चन्द्रधर उपाध्याय के शिष्य थे।[2] समयसुंदर ने अपने गुरु की आज्ञानुसार यात्राएं कीं। इनमें से प्रमुख यात्राएं—मुलतान, लाहोर, अहमदाबाद, खम्भात, आगरा, मारोठ, मेड़ता, नागोर, रणकपुर, पाटण, जालोर, जैसलमेर आदि थे।[3] इन्हीं नगरों के उपासरों में रहकर समय सुंदर ने छोटी-बड़ी लगभग 500 रचनाओं का निर्माण किया। वि.सं. 1672-1685 तक वे प्रायः नागौर जनपद में आते रहे और यहां रहते हुए उन्होंने निम्नलिखित रचनाओं का निर्माण किया—

1. समयचारी शतक (भाषा संस्कृत, वि.सं. 1672, मेड़ता नगर में)
2. विशेष शतक (भाषा संस्कृत, वि.सं. 1672, मेड़ता नगर में रचित, पत्र 67)[4]
3. क्षमाबत्तीसी (भाषा-राजस्थानी-गुजराती, नागोर नगर में रचित)[5]
4. सिंहलसुत प्रियमेलक रास (भाषा-राजस्थानी-गुजराती वि.सं. 1672, मेड़ता नगर में रचित)[6]
5. नलदमयन्तीरास (राजस्थानी-गुजराती, वि.सं. 1667, मेड़ता नगर में रचित)[7]
6. शत्रुंजयरास (राजस्थानी-गुजराती, वि.सं. 1682, नागौर नगर में रचित)[8]
7. सीताराम प्रबन्ध चौपई (राजस्थानी-गुजराती, वि.सं. 1683, मेड़ता नगर में विरचित)[9]

---

1. सीताराम चौपई : ग्रंथांक 3958, रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर
2. (क) अर्थरत्नावली (अष्टलक्ष्मी की प्रशस्ति) पीटरसेन रिपोर्ट नं. 1174, पृ. 68
   (ख) सं. मो. ला. द. चंद देसाई - आनंदकाव्य महौदधि, मौ. 7, पृ. 17-18
3. आनंदकाव्य महोदधि, मौ. 7, पृ. 23-26
4. वही
5. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. ग्रं. 8422(15), पत्र 80-82
6. वही, ह. ग्रंथांक 261
7. वही, ग्रं. 3889
8. वही, ग्रं. 10954
9. वही, ग्रं. 3958

कवि की "शत्रुंजय यात्रा रास" नामक रचना में "तिल्ली रा गीत री ढाल" के संदर्भ में कहा गया हैं कि यह देशी रागिनी मेड़ता नगर में काफी प्रसिद्ध थी। इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन नागौरजनपद में संगीत की अनेक गायकियां प्रचलित थीं।

5. हर्षगणि–

जिनचंद्र सूरि के शिष्य हर्षगणि नागौर तपागच्छ के प्रमुख कवि हैं। वि.सं. 1673 में इन्होंने मेड़ता में पंचमी तप गर्भित "नेमिजिनवर स्तवन"[1] की रचना की। कवि की यह एक लघु रचना है, जिसमें जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की स्तुति की गई है।

6. सुमतिहंस–

ये बेगड़गच्छ के जैन कवि थे। जिनहर्ष सूरि के ये शिष्य थे। नागौर मण्डल में रहकर आपने मेघकुमार चौपई (वि.सं. 1686, पीपाड़), चौबीसी (वि. सं. 1697, मेड़ता), वैदर्भी चौपई (वि.सं.1713, जयतारण), रात्रिभोजन चौपई (वि.सं. 1723, जयतारण) आदि काव्य रचनाओं का निर्माण किया।

7. कमलहर्ष–

ये जिनराज सूरि के शिष्य मानविजय जी के शिष्य थे। इनका "जिनराज सूरि का गीत" ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह[2] में संगृहीत है। इन्होंने "पाण्डवरास" नामक रचना का निर्माण मेड़ता में रहकर वि.सं. 1728 की आसोज वदि दूज को किया। इनके अलावा कमलहर्ष की अन्य रचनाएं धन्ना चौपई (वि.सं.1725 आसोज सुदि 6, सोजत), अंजना चौपई (वि.सं. 1733 भादवा सुदि 2), रात्रि भोजन चौपई (वि.सं.1750, लूणकरणसर), आदिनाथ चौढालियो एवं दशवैकालिक सज्झाय हैं।[3]

8. जयचंद्र यति–

वचनिका त्रय में प्रसिद्ध रचना "माताजी री वचनिका" के रचयिता जयचंद्र यति भी नागौर के निवासी थे। वचनिका के अनुसार ये खरतरगच्छीय यति थे। कृति की पुष्पिका के अनुसार जयचंद्र यति ने इसकी रचना जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह

1. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. ग्रं. 12205(18)
2. सं. भंवरलाल नाहटा, पृ. 234-250
3. सं. भंवरलाल नाहटा, ऐ. जै. का. सं., पृ. 102

के शासनकाल में वि.सं. 1776 में कुचेरा (नागौर) नामक ग्राम में की। रचना का मूल विषय दुर्गासप्तशती पर आधारित भगवती की आराधना है। कवि ने यथाप्रसंग महाराजा अजीतसिंह और उनके शासन प्रबन्ध का भी वर्णन किया है।

9. जयमल्ल[1] –

लांबिया ग्राम के मोहता मोहनदास के ये पुत्र थे। एक बार जयमल्ल व्यापार के लिये मेड़ता आये। वहां उनका ऋषि भूधर से मिलना हुआ। उनके उपदेश से वे बहुत प्रभावित हुए। वि.सं. 1788 मिगसर वदी 2 को 22 वर्ष की आयु में मेड़ता में ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। वि.सं. 1852 में वे नागौर आये। व्याधि के कारण यहीं उन्होंने वि.सं. 1853 में संथारा किया। अपने जीवनकाल में उन्होंने नागौर मण्डल के विभिन्न स्थानों में रहकर खंधक ऋषि चौपई (वि.सं. 1811, लाडनूं), वीश वीहरमान स्तवन (वि.सं. 1824, मेड़ता), देवदत्ता चौपई (वि.सं. 1825, नागौर) रचनाओं का निर्माण किया, जिनमें यहां के सांस्कृतिक जीवन का अच्छा चित्रण हुआ है।

10. ज्ञानसागर–

ज्ञानसागर ने नागौर में रहकर दो रचनाएं लिखीं-इलायची कुमार रास[2] और आषाढ़भूतिरास।[3] प्रथम रचना का सृजनकाल वि.सं. 1829 लिखा मिलता हैं।[4] इसका विषय जैन मुनि इलायची कुमार की दीक्षा से सम्बद्ध हैं। दूसरी रचना में भी शील का उपदेश कथन है। दोनों ही रचनाओं की पुष्पिकाओं से कवि तपागच्छीय यति सिद्ध होता है।

11. रायचंद्र–

ये जयमल जी के शिष्य और पट्टधर थे। अपने गुरु की भांति ही इन्होंने लगभग पचास रचनाओं का निर्माण किया। नागौर मण्डल के विभिन्न स्थानों में रचित इनकी निम्नलिखित रचनाएं मिलती है। इनकी पुष्पिकाओं में कवि का नाम ऋषि रायचन्द भी मिलता है। संभव है इन्हें ऋषि की उपाधि प्राप्त हो—

---

1. सं. डॉ. नारायणसिंह भाटी - परम्परा, राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल, अंक, पृ. 121-122
2. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. लि. ग्रं. 2045
3. वही, ग्रं. 3553(6)
4. वही, ग्रं. 907

"जुगमंधर स्तवन (वि.सं.1821, नागौर)[1], समाधि पच्चीसी (वि.सं.1833, मेड़ता), मरुदेवी सज्झाय (वि.सं.1833, मेड़ता), महावीर जी रो चौढालियो (वि.सं. 1839, मेड़ता)[2], मेतारज चौपई (वि.सं.1842, नागौर), जयवंती रो सतढालियो (वि.सं.1842, नागौर)[3], कलावती चौपई (वि.सं.1837, मेड़ता), ऋषभचरित (वि.सं. 1840, पीपाड़) आषाढ़भूति पंचढालियौ (वि.सं. 1837, नागौर), सम्यकत्व चौढालियो (वि.सं. 1833, पीपाड़), नालंदापाड़ा सज्झाय (वि.सं.1838, नागौर), दीवाली स्तवन (वि.सं.1847, मेड़ता), रावण ढाल (वि.सं.1833, मेड़ता) देवकी ढाल (वि.सं. 1838, नागौर), नंदण मणिहार चौपई, वि.सं. 1821, नागौर), ज्ञान गुणमाला (वि.सं. 1855, मेड़ता), तपोधन अणगारढाल (वि.सं. 1842, नागौर), कृपण पच्चीसी (मेड़ता), दीक्षा पच्चीसी (वि.सं. 1836, नागौर) आदि ।

12. उत्तमचंद भण्डारी–

ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के सचिव, मित्र एवं उच्च कोटि के साहित्यकार थे । राजकीय कार्यों से ये नागौर में काफी समय तक रहे । इसी काल में यहां भंडारी जी ने काव्यशास्त्रीय ग्रंथ "अलंकार आशय" का सर्जन किया । इस रचना के अतिरिक्त उत्तमचंद भंडारी की अन्य रचनाएं तर्क-तत्वनाथ चन्द्रिका भी है । ये प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे । भाषाओं के साथ ही काव्यशास्त्र की शिक्षा इन्होंने अपने अनुज उदयचंद भंडारी को दी । कविराज बांकीदास से इनकी गहरी मित्रता थी । वस्तुतः उन्हें राजदरबार में ले जाने का श्रेय उत्तमचंद भंडारी को ही जाना चाहिये ।

13. उदयचंद भण्डारी–

जोधपुर नगर के त्रिपोलिया बाजार में स्थित 'पेटी का नोहरा' नामक स्थान पर इनका जन्म वि.सं. 1840 की ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी गुरुवार के दिन हुआ था । इनका जन्म नाम आनन्दमल्ल था । धार्मिक दृष्टि से ये जैन सम्प्रदाय की तपागच्छीय शाखा के अनुयायी थे । इनके संभावित गुरु मुनि सागरचंद्र जी थे ।

उदयचंद अच्छे राजनीतिज्ञ और प्रशासक थे । इसी कुशलता के कारण वे नागौर जनपद के डीडवाना, मेड़ता, नागौर की दीवानी अदालतों में अधिकारी रहे ।

---

1. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. लि. ग्रं. 10907(4), पत्र 7-8
2. वही, 10907(3), पत्र 6-7
3. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 11994, पत्र 1-4

इसी समय उदयचंद भंडारी ने नागौर में ज्ञान-प्रदीपिका और छंद प्रबन्ध तथा डीडवाना में शनीश्चरजी की कथा का प्रणयन किया। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि की विविध विषयों पर लिखित लगभग 25 रचनाएं और मिलती हैं, जिनमें उल्लेखनीय रचनाएं हैं—साहित्यसार, छन्द-विभूषण, ब्रह्मविलास, आत्मज्ञान आदि।

इन जैन रचनाकारों के अतिरिक्त नागौर जनपद के निम्नलिखित कवि भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इनका निजी परिचय अधिक प्राप्त नहीं होता, किन्तु इनकी रचनाओं में यथा प्रसंग नागौर जनपद से सम्बद्ध राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास के स्तोत्र अवश्य उजागर हो जाते हैं—

14. चौथमल—

इनका जन्म वि.सं. 1800 में भंवाल गांव में हुआ था। झामड़ गोत्रीय रामचंद्र इनके पिता और गुमान बाई माता थी। मुनि अमीचंद के पास वि.सं. 1810 में इन्होंने मुनि दीक्षा ग्रहण की। वि.सं. 1880 में मेड़ता में इनका स्वर्गवास हुआ। चौथमल जी ने राजस्थानी में अच्छी काव्य रचनाएं कीं। अपने जीवनकाल में नागौर-मण्डल में निवास करते हुए कवि ने निम्नलिखित रचनाएं निर्मित कीं—

महाभारत (ढालसागर-ढाल 163, वि.सं. 1856, नागौर), श्रीपालचरित्र (वि.सं.1862, पीपाड़), धनावा सेठ री ढाल (जैतारण), रहनेमी राजमती ढाल (वि.सं. 1862, पीपाड़), चौदह श्रोतावां री ढाल (वि.सं. 1852, पीपाड़), तामलीतापस चरित्र (जैतारण), सनतकुमार चौढालियो (पीपाड़)।

15. रत्नचंद्र—

ये नागौर निवासी गंगाराम जी सरस्वती के दत्तक पुत्र थे। पूज्य गुमानचंद जी के उपदेशों से वैराग्य धारण कर वि.सं. 1848 में मण्डोर में दीक्षा ग्रहण की। इन्हें आचार्य पद वि.सं. 1882 में मिला और वि.सं. 1902 की जेठ सुदि चौदस को जोधपुर में इनका देहान्त हुआ। रत्नचंद्र जी का जन्म वि.सं. 1834 में कुढ गांव में हुआ। वि.सं. 1852-1891 तक लिखित कवि की लगभग दस रचनाएं मिली है। इनमें से गज सुकुमाल चरित्र की रचना इन्होंने नागौर में वि.सं. 1875 में की। यह एक लघु रचना है।

16. सबळदास—

सबळदास आसकरण जी के शिष्य और पट्टधर थे। पोकरण के लूणिया आणंदराम की पत्नी सुन्दरबाई की कुक्षि से इनका जन्मवि.सं. 1829 में हुआ। बारह

वर्ष की आयु में ही इन्होंने जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। अपने गुरु आसकरण जी के देहान्त के उपरान्त जोधपुर में ही इन्हें आचार्य पद वि.सं. 1872 में मिला। नागौर में रचित इनकी दो रचनाएं उपलब्ध हैं—

1. शील सज्झाय (वि.सं. 1887)[1] एवं
2. धन्ना चौपई ढाल 62 (वि.सं.1890)।[2]

17. **शिवसुंदर**— (खरतरगच्छीय सोमध्वज के शिष्य गौतम पृच्छा, खींवसर, नागौर, वि.सं. 1569)

18. **कनकसोम** (जिनपालित जिनरक्षित रास, वि.सं. 1632, नागौर, थावचा सुकोशल चरित्र, वि.सं. 1655, नागौर)[3]

19. **गुणविजय** (विजयसूरि विजय प्रकाश रास, वि.सं. 1652)[4]

20. **वाचक सूरचंद** (शृंगार रसमाला, वि.सं. 1659, नागौर)

21. **विमल चरित्र** (अंजना सुंदरी रास, वि.सं. 1663, पद्य 397, नागौर)

22. **दानविनय** ("नंदीसेन चौपई, गाथा 86, वि.सं. 1655, नागौर)[5]

23. **विद्यासागर** (कलावती चौपई, वि.सं. 1673, नागौर)

24. **महिमामेर** (नेमिराजुल फाग, वि.सं. 1673, नागौर)

25. **सुमतिवल्लभ** (श्री जिनदास सूरि निर्वाण रास, वि.सं. 1719)[6]

26. **हीराणंद** (अमृतमुखी चतुष्पदी, वि.सं. 1727, मेड़ता)

27. **जिनलब्धि सूरि** (नवकार महात्म्य चौपई, वि.सं. 1750, जयतारण)

28. **कुशलसिंह** (संतकुमार चौढालियो, विं.स. 1789, जयतारण)

---

1. जिनवाणी, वर्ष 16, अंक 11 में प्रकाशित
2. जैनरत्न पुंस्तकालय, जोधपुर में संगृहीत
3. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में संगृहीत
4. सं. भंवरलाल नाहटा - ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ. 341-364
5. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में संगृहीत
6. ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रह, पृ. 191-200

29. **आसकरण** (नेमी अथवा चूनड़ीढाल, वि.सं. 1849[1], धन्ना सतढालियौ, वि.सं. 1859, नागौर ।[2]

इन जैन कवियों की हेमतिलक सूरि संधि (15 वीं शताब्दी)[3], विजयसिंह सूरि विजय प्रकाश रास (वि.सं. 1652)[4], श्री जिनराज सूरि निर्वाण रास (वि.सं. 1719)[5] नामक रचनाओं में नागौर जनपद के संदर्भ में ऐतिहासिक सामग्री मिलती है । प्रथम रचना चालीस पद्यों में रचित हैं । इन पद्यों के अनुसार नागौर के गांधी वीजड के दोलड़ नामक पुत्र हुआ । उसके 14 वर्ष के होने पर बड़गच्छ के वादिदेव सूरि परम्परा के आचार्य जयशेखर सूरि का वहां पर्दापण हुआ । दोलड़ कुमार ने उन आचार्य श्री की धर्मदेशना सुनी और उससे प्रभावित होकर कडलू नगर के ऋषभ मंदिर में सं. 1353 में मुनि-दीक्षा ग्रहण की । उनका दीक्षा नाम 'हेमकलश' रखा गया । पढ़ लिख कर वे विद्वान बने और सं. 1370 में उन्हें वाचनाचार्य का पद दिया गया । उस समय पालही साह ने उत्सव किया । अनुक्रम से विहार करते हुए वे नागौर आये तब सं. 1374 के जेठ सुदि 2 को उन्हें वज्रसेन सूरि ने अपने पट्ट पर स्थापित किया । इस आचार्य पद का उत्सव नाहरवंशीय फम्मणु श्रावक ने किया था । अन्त में आरासन में आने पर उन्होंने अपना अन्तकाल समीप आया देखा, तो अनशन आराधना करके शरीर त्याग दिया । सं. 1400 से बिलाड़ पद्मसाह के उत्सव द्वारा उनके पट्ट पर रत्नशेखर सूरि को स्थापित किया गया ।

दूसरी रचना में विजयसिंह सूरि की आध्यात्मिक विजय की कथा कही गई है । पार्श्वनाथ की स्तुति के साथ संपूर्ण यात्रा का वर्णन किया गया है । मरुमण्डल में कवि ने मेड़ता नगर का विस्तार के साथ वर्णन किया है । इस नगर की कीर्ति समस्त संसार में हैं । यहां का राजा मान्धाता चक्रवर्ती राजा है । मेड़ता अलकापुरी के समान सम्पन्न है ।[6]

---

1. जैनरत्न पुस्तकालय, जोधपुर में संगृहीत
2. जैन गुर्जर कविओ, भाग-3, पृ.333
3. सं. नारायणसिंह भाटी - परम्परा, भाग 48, 1978 ई., पृ.36
4. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ.341-364
5. वही, पृ.191-200
6. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ.344-46; चौ.32-56

मेड़ता का ऐसा ही वर्णन "जिनराज सूरि निर्वाण रास" नामक रचना में मिलता है। कवि सुमति वल्लभ के अनुसार यहां आसकरण, ओसवाल, चौपड़ा और गोलछों के परिवार अधिक थे।[1]

इस विवेचन से नागौर जनपद में रचित जैन साहित्य की एक समृद्ध परम्परा का परिचय होता है। इनकी रचनाओं में तद् युगीन परिस्थितियों और मान्यताओं का सजीव चित्रण हुआ है। भण्डारी बंधुओं की रचनाओं से यह भी स्पष्ट होता है कि उत्तर मध्यकाल में वृद्धिमान रीति विवेचक ग्रंथों का भी नागौर जनपद में निर्माण हुआ। यह उस जनपद की राजस्थानी साहित्य को ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी काव्यशास्त्र की भी महत्ती उपलब्धि है।

◆◆◆

1. वही, पृ. 191-200, ढाल 1, चौ. 1-2; ढाल 2, चौ. 51

9

जैन-साहित्य में अगड़दत्त कथा-परम्परा एवं कुशललाभ कृत अगड़दत्तरास

जैन-साहित्य में अगड़दत्त से सम्बन्धित कथा को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन समाज में यह कथा अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। जैन लेखकों ने इसे लोक से ग्रहण किया है अथवा किसी प्राचीन साहित्य-कथा-चक्र से, यह उस समय तक निश्चय कर पाना दुष्कर कार्य है, जब तक इसके प्रमाण स्वरुप कोई सूत्र नहीं मिले। जैन समाज में इसके प्रचार का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि अति प्राचीन काल से इस कथा को आधार बनाकर जैन विद्वानों ने अनेक आख्यानों और काव्यों की रचना की।[1] कई-एक ग्रंथों में इस कथा को दृष्टान्त रुप में उद्धृत किया गया है। संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती और अन्य अनेक भाषाओं में अगड़दत्त को आधार मानकर साहित्य रचा गया है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों रुपों में समान रूप से उपलब्ध है।

उक्त भाषाओं में लिखित अगड़दत्त सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन रूप का निर्धारण तो नहीं किया जा सकता, किन्तु सबसे प्राचीन रूप जो अब तक प्राप्त हुआ है वह है पांचवी शताब्दी में संघदास गणि द्वारा "रचित वसुदेव हिण्डी कथा" एवं अवान्तर कथा रूप में इसका उपविभाग "धम्मिल हिण्डी"।[2] आठवीं शताब्दी के जिनदास गणि ने अपनी "उत्तराध्ययन चूर्णिका" में इसका प्रयोग दृष्टान्त रूप में किया है। इसके पश्चात् यही कथा वादि वेताल शान्ति सूरि कृत उत्तराध्ययन की प्राकृत (पाइय) टीका

1. श्री भंवरलाल नाहटा, अगड़दत्त कथा और तत्संबंधी जैन साहित्य वरदा, वर्ष 2, अंक 3, पृ. 2
2. डॉ. जे. सी. जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 115-163

में, सं. 1129 में नेमिचन्द रचित उत्तराध्ययन टीका में 328 प्राकृत पद्यों में दी गई है। श्री विनयभक्ति, सुन्दरभक्ति, सुन्दरचरण ग्रन्थमला की ओर से संस्कृत में किसी अज्ञात कवि कृत "अगड़दत्त-चरित्र" 334 श्लोकों में प्रकाशित हुआ है। पर, रचना-संवत् के अभाव में इसकी प्राचीनता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

अस्तु, इस कथा की परम्परा का आरंभ 16 वीं शताब्दी में लिखित गुजराती और राजस्थानी भाषा के अगड़दत्त-सम्बन्धित कथा साहित्य से माना जा सकता है, जिसकी अविच्छिन्न धारा 18 वीं शती के अन्त तक अबाध गति से बहती हुई हमें स्पष्ट दिखायी देती है। अगड़दत्त सम्बन्धी अद्यावधि प्राप्त काव्यों की सूची इस प्रकार है—

1. अगड़दत्तरास (सं.1584 आषाढ वदी 14 शनिवार) भीमकृत[1]
2. अगड़दत्त मुनि चौपई (सं.1601) सुमति।[2]
3. अगड़दत्त रास (सं. 1625 का. सु. 15 गुरुवार)— कुशललाभ।[3]
4. अगड़दत्त प्रबन्ध (सं.1666) – श्री सुन्दर।[4]
5. अगड़दत्त चौपई (सं.1670) – क्षेमकलश।[5]
6. अगड़दत्त रास (र.सं.1679) – ललित कीर्ति।[6]
7. अगड़दत्त रास (र.सं. 1685) – स्थान सागर।[7]
8. अगड़दत्त रास (अपूर्ण, वि.सं.17 वीं शताब्दी)— गुणविनय।[8]
9. अगड़दत्त चौपई (र.सं. 1703) – पुण्य-निधान।[9]
10. अगड़दत्त रास-कल्याण सागर।[10]
11. अगड़दत्त ऋषि चौपई (र.सं. 1787) – शान्ति सौभाग्य।[11]
12. अगड़दत्त रास (अपूर्ण)[12]

---

1. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ह. लि. ग्रं. 27233
2. वही, ग्रंथांक 1124
3. (क) भण्डारकर प्राच्यविद्या मन्दिर, पूना, ह. लि. ग्रं. 605
   (ख) प्राच्यविद्या मन्दिर, बड़ौदा, ह. लि. ग्रं. 14289

4-12. वरदा, वर्ष 12, अंक 3, पृ. 2

इनमें से कुशललाभ द्वारा रचित "अगड़दत्त रास" की संक्षिप्त कथा यहां प्रस्तुत की जाती है-बसन्तपुर में राजा भीमसेन राज करता था। उसकी पटरानी का नाम सोमसुन्दरी था। सूरसेन नाम का उसका एक बलशाली सामन्त था, जिसके अगड़दत्त नाम का एक रूपवान पुत्र था। सूरसेन की ख्याति सुनकर एक सुभट वहां आया। राजा की अनुमति से सुभट और सूरसेन में युद्ध हुआ, जिसमें सूरसेन मारा गया। राजा ने सुभट को अपना सेनापति बनाया और उसका नाम अभंगसेन रखा।

पिता की मृत्यु के पश्चात् अगड़दत्त की माता ने अत्यन्त दुःखी अवस्था में उसका पालन-पोषण किया। पति की इच्छानुसार उस पुत्र को आठ वर्ष की आयु में चम्पापुरी के ब्राह्मण सोमदत्त के पास अध्ययन के लिए भेज दिया। चम्पापुरी पहुंचकर अगड़दत्त ने सोमदत्त को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सोमदत्त ने उसकी व्यवस्था एक व्यवहारी के घर कर दी। अगड़दत्त शिक्षा ग्रहण करने लगा। एक दिन वाटिका के पास गवाक्ष में बैठी व्यवहारी की रुपवान कन्या मदनमंजरी को अगड़दत्त ने देखा। कुंवर अगड़दत्त एक दिन वाटिका में सो रहा था तभी मदनमंजरी गवाक्ष से वृक्ष की डालियों पर होती हुई उसके पास आई और अपना प्रणय निवेदन किया। मदनमंजरी के आग्रह पर उसने उसका ठीक से अध्ययन परीक्षण कर उसके साथ विवाह करने का उसे वचन दिया।

सोमदत्त इस घटना से परिचित था। अगड़दत्त ने अध्ययन के उपरान्त अपने घर लौटने की आज्ञा मांगी। गुरु कुंवर अगड़दत्त का मदनमंजरी से विवाह का प्रस्ताव लेकर राजा के पास पहुंचा। परिचय प्राप्त करके राजा ने उसे सम्मान दिया। इसी समय चोरों के उत्पात से भयभीत नगर के महाजनों ने राजा से अपना दुख-दर्द सुनाया। राजा ने चोरों को पकड़ने के लिए बीड़ा फिराया और चोर को पकड़कर लाने वाले को सवा लाख रुपये का पुरस्कार भी देने की घोषणा की। अगड़दत्त ने बीड़ा झेल लिया तथा सात दिन में चोर को पकड़कर लाने का वचन दिया।

वेश्याओं, जुआरियों आदि के स्थानों पर चोर की खोज में उसने छह दिन बिता दिये पर चोर नहीं मिला। सातवें दिन चिंतितमना वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था, तभी उसने एक योगी को जाते हुए देखा। योगी की पृच्छा पर उसने बताया कि वह एक जुंआरी है और सारा धन जुए में हार चुका है। अतः वह चोरी करने को निकला है। उत्तर सुनकर योगी ने उसे अपने साथ ले लिया। कुंवर ने भी अनुमान लगा लिया कि यही चोर है, अतः वह उसके निर्देशानुसार ही कार्य करने लगा।

योगी वेश बदल कर अगड़दत्त के साथ चोरी करने निकला और सागरसेवी नाम के व्यापारी के घर सेंध डाली। सेंध डाल कर लौटने पर योगी (चोर) ने कुंवर को सोये हुए अनेक मजदूरों के बीच विश्राम करने के लिए भेज दिया। थोड़ी देर बाद योगी भी वहां पहुंचा और सोये हुए मजदूरों को अपनी तलवार से मौत के घाट उतारने लगा।

योगी के आचरण को देखकर कुंवर ने उस पर प्रहार किया। मरते समय योगी ने उससे कहा कि वह उसकी तलवार सामने वाले पर्वत पर खड़े पीपल के वृक्ष में रह रही उसकी बहिन वीरमती को दे दे और उससे विवाह करले। बहिन की यह प्रतीज्ञा थी कि जो उसके भाई का वध करेगा, उसी के साथ वह विवाह करेगी।

अगड़दत्त पीपल के वृक्ष की ओर गया। उसने वहां गुफा में वीरमती से भेंट की। अपने भाई की हत्या का बदला लेने की दृष्टि से अगड़दत्त को पलंग पर बैठाकर वह ऊपर चली गई। अगड़दत्त त्रिया चरित्र से परिचित था, अतः वह एक ओर हट गया। वीरमती ने ऊपर से एक शिला गिरा दी। पर जब वह नीचे आई तो अगड़दत्त को जीवित पाकर स्तंभित रह गई। उसने पुनः अगड़दत्त पर तलवार से वार किया, पर कुंवर फिर भी सुरक्षित ही रहा। वीरमती और उसके खजाने को लेकर वह राजा के पास आया।

राजा ने मदनमंजरी के साथ उसका विवाह कर दिया। कुंवर अगड़दत्त मदनमंजरी को साथ लेकर वसन्तपुर की ओर चला। गोकुल नामक स्थान पर उसे कुछ लोगों ने बताया कि वह मार्ग भूल गया है। जिस मार्ग से वह जा रहा है उस पर उसे नदी, केहरी, सिंह, सर्प और चोर, इन चार संकटों का सामना करना पड़ेगा। मदनमंजरी के मना करने पर भी वह उसी मार्ग पर बढ़ता रहा और मार्ग में उसे उक्त संकटों का सामना करना पड़ा। कठिनाइयों को पार कर वसन्तपुर पहुंचने पर उसके परिवार ने उसका स्वागत किया।

अभंगसेन को उसने एक सरोवर के समीप स्वागतार्थ आमंत्रित कर द्वन्द्वयुद्ध में मौत के घाट उतार दिया। माता-पिता को विदा कर कुंवर अगड़दत्त मदनमंजरी के साथ सरोवर पर ही रुक गया। मदनमंजरी को अगड़दत्त की अनुपस्थिति में पर-पुरुष से संभोग करते देख कर आकाश मार्ग में विहार करता एक विद्याधर वहां उतर आया और उसे मारने को तत्पर हुआ। इसी बीच एक सांप ने मदनमंजरी को डस लिया। अगड़दत्त को जब उसकी मृत्यु का पता चला तो वह विलाप करता हुआ

पत्नी को लेकर उसके साथ अग्नि-प्रवेश करने लगा। विद्याधर ने नारी के लिए मरने को व्यर्थ बताया, पर अगड़दत्त ने इसे स्वीकार नहीं किया, अपितु विद्याधर से उसे जीवित कर देने की प्रार्थना करने लगा।

विद्याधर ने मंत्रप्रयोग कर मदनमंजरी को पुनर्जीवित किया। तत्पश्चात् मदनमंजरी के परपुरुष के साथ संभोग की समस्त आंखों देखी घटना कुमार को सुना दी। कुमार ने विद्याधर को नवसरहार भेंट कर विदा किया।

विद्याधर के जाने के बाद मदनमंजरी ने कुंवर के समीप के देहरे में चलकर विश्राम करने का निवेदन किया। देहरे में पहुंचकर मदनमंजरी ने वहां उसे प्रकाश करने के लिए कहा। अगड़दत्त आग की खोज में निकला। इसी अवधि में कुंवरी की भेंट तीन चोरों से हुई। परिचयोपरान्त मदनमंजरी ने उनसे अपने पति की हत्या करके उसे अपने साथ ले चलने का आग्रह किया। सशंकित चोरों ने पहले तो इन्कार किया पर बाद मे उन्होंने स्वीकृति दे दी। मदनमंजरी ने चोरों के दीपक को प्रज्वलित किया। अगड़दत्त के लौटने पर देहरे में प्रकाश देखकर मदनमंजरी से उसके विषय में पूछताछ की। मदनमंजरी ने उसे कुंवर द्वारा लाई गई आग का प्रतिबिम्ब कह कर उसके संदेह को दूर किया। कुमार ने अपना खड़ग उसे दिया और स्वयं अग्नि प्रज्वलित करने लगा। मदनमंजरी ने उसका वध करने के लिये उस पर खड़ग प्रहार किया, पर खड्ग दूर जा गिरा। कुमार की पृच्छा पर उसने उत्तर दिया कि उसने खड्ग को उल्टा पकड़ लिया था, अतः वह गिर गया।

चोर इस घटना को देखकर बहुत भयभीत हुए। वे सोचने लगे कि संसार स्वार्थी है। पत्नी भी स्वार्थवश अपने पति की हत्या कर सकती है। इस दृश्य से प्राप्त सत्य ने उन्हें विरागी बना दिया। वे चले गये। मार्ग में उन्हें एक मुनि मिला। उन्होंने उससे दीक्षा ली।

अगड़दत्त पत्नी सहित घर पहुंचा और पुत्रवान हुआ। एक दिन अगड़दत्त अपने प्रधान के साथ घूमता हुआ उस स्थान पर पहुंचा, जहां भुजंगम नामक चोर साथी चोरों सहित तपस्या कर रहा था। अगड़दत्त ने उनके वैराग्य का कारण पूछा तो उसने बताया कि यह अगड़दत्त का उपकार है। अगड़दत्त ने उस अगड़दत्त का परिचय पूछा तो चोर ने मदनमंजरी के दुराचरण, पर-पुरुष के साथ संभोग एवं देहरे में घटित सारी कहानी उसे सुना दी।

यति चोर से अपनी ही कहानी सुनकर कुंवर दुखी हुआ। उसने समझ लिया कि त्रिया चरित्र अत्यन्त कुटिल है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके

पश्चात् अगड़दत्त भी भुजंगम चोर के पास दीक्षित हुआ और नवम् गवाक्ष को प्राप्त कर शिवपुरी पहुंचा।

इस प्रकार कुशललाभ कृत "अगड़दत्त रास" प्राकृत-भाषा में लिखित "अगड़दत्त चरित और 16 वीं शताब्दी में रचित भीमकृत अगड़दत्त रास की ही परम्परा में विकसित रूप है। अतः इसकी तुलना वसुदेव हिण्डी, नेमिचन्द्र रचित उत्तराध्ययन टीका, भीमकृत "अगड़दत्त रास" तथा सुमति के अगड़दत्त मुनि चौपई आदि पूर्ववर्ती कृतियों में वर्णित कथाओं से निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत की जा सकती हैं।

1. अगड़दत्त का परिचय–

कुशललाभ ने स्वरचित रास में अगड़दत्त को बसन्तपुर के सेनापति शूरसेन का पुत्र कहा है[1] जबकि वासुदेव हिण्डी में वह उज्जयिनी के अमोधरथ सारथी का पुत्र कहा गया है।[2] नेमिचन्द और सुमति क्रमशः शंखपुर के राजा सुन्दर[3] अथवा सुरसुन्दर[4] का पुत्र घोषित करते हैं, तो भीमकृत अगड़दत्त रास में वह चम्पानगरी के राजा वीरसेन का पुत्र कहा गया है।[5] वसुदेवहिण्डी, सुमतिकृत अगड़दत्त मुनि चौपई और कुशललाभ कृत अगड़दत्त रास में उसकी माता के विषय में कहीं कुछ भी नहीं कहा गया है, जबकि नेमिचन्द उसकी माता का नाम सुलसा[6] देता है और भीम वीरमती।[7]

---

1. बसन्तपुर सेनापति जेह, सूरसेन नंद नंदन एक । 1 चौ. 44
   – भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, पूना, ग्रं. 605
2. डॉ. जे. सी. जैन प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ. 13, 169
3. वही, पृ. 170
4. संषपुरी नगरी छई किसी। तिणी नयरी सुरसुन्दर राई। अगड़दत्त तसु दीधउ नाम ॥ चौ. 9-11 ॥ —राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, ग्रं. 1124
5. भरथषेत्र महीयलि माणियइ, चंपावह नगरी जाणीयह।
   वीरसेन नामई बलवंत, राजा राज करइ जयवंत ॥29॥
   × × ×
   दीउड बालक अति अभिराम, अगड़दत्त तसु दीधउ नाम ॥32॥
   —राज. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 27233
6. डॉ. जे. सी. जैन - प्राकृत जैन साहित्य, पृ. 13
7. बीरमति धरिराणी इसी, रूपिइ रंजावे डरिवसि ॥24॥
   —रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 27233, चौ. 41-43

2. अगड़दत्त की शिक्षा–

कुशललाभ के अनुसार अपने पति की मृत्यु के उपरान्त राज्य में अपना अनादर होता देख अगड़दत्त की माता अपने पुत्र को विद्याध्ययन के लिये अपने स्वर्गीय पति की इच्छानुसार उनके मित्र उपाध्याय सोमदत्त के पास चम्पापुर भेजती हैं ।[1] यही वृतांत "वसुदेव हिण्डी" में वर्णित है, किन्तु यहां स्थान का नाम कौशाम्बी तथा गुरु का नाम आचार्य दृढ़ प्रहरी दिया गया है ।[2] इसके विपरीत उत्तराध्ययन वृत्ति[3], भीमकृत "अगड़दत्त रास"[4] तथा सुमति द्वारा रचित अगड़दत्त मुनि चौपई[5] में यह प्रसंग इतर रुप में प्रस्तुत हुआ है । इन "कथा" रूपों में नगरवासियों द्वारा अगड़दत्त पर व्यभिचारिता का लांछन लगाया जाता है । परिणामस्वरूप राजा उसे देश निकाला देता है और वह उज्जैन अथवा बनारस पहुंचकर गुरु से शिक्षा ग्रहण करता है ।

3. मदनमंजरी का प्रणय-निवेदन–

कुशललाभ आदि कवियों ने मदनमंजरी के अगड़दत्त के प्रति आसक्ति एवं प्रणय निवेदन का कारण उसके पति का विदेश-गमन कहा है । किन्तु भीमकृत 'अगड़दत्तरास' में इसका कारण उसके पति का कुबड़ा होना वर्णित है । इस अतृप्त वासनावश वह अगड़दत्त पर गवाक्ष से कंकर मारा करती है ।[6]

4. मदनमंजरी और उसके पिता के नाम अगड़दत्त से प्रणय निवेदन करने वाली नायिका के नाम और उसके कुल तथा पिता के नाम के विषय में भी इन कथारूपों में अन्तर दिखाई देता है । कुशललाभ के "अगड़दत्त रास" में नायिका का नाम मदनमंजरी है और पिता का नाम सागरसेठ ।[7] 'वसुदेव हिण्डी' में इसका नाम सामदत्ता

---

1. भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, पूना, ग्रं. 605, चौ. 25-27
2. डॉ. जे. सी. जैन - प्राचीन जैन कथा-साहित्य, पृ. 13
3. वही, पृ. 170
4. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 27233, चौ. 41-43
5. वही, ग्रंथांक 1124, चौ. 15-18
6. वही, ग्रंथांक 27233, चौ. 101-105
7. इणि अवसरि बाड़ी नइ पासि, सागर सेठी तवाड आवास ॥36 ॥
साहमइ गउषि सेठि कुंअरी तेहनउं नाम मदनमंजरी ॥37 ॥
—भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, ग्रं. 605

और पिता का नाम गृहपति यज्ञदत्त वर्णित है[1], जबकि भीम ने नायिका का नाम विषया देकर उसे विनयसागर राजा के प्रधान मतिसागर की पुत्री कहा है।[2] सुमति ने इस नायिका का नाम त्रिलोचना दिया है और उसके पिता का नाम बंधुदत्त।[3]

5. अगड़दत्त का विवाह–

अगड़दत्त द्वारा चोर की खोज एवं मदमस्त हाथी को अपने वश में कर लेने के पश्चात् प्रायः सभी रूपान्तरों में राजा की पुत्री का विवाह अगड़दत्त के साथ होना वर्णित है। किन्तु कुशललाभ ने इस विवाह के पश्चात् मदनमंजरी की धाय को अगड़दत्त के पास भिजवाकर उसे मदनमंजरीके साथ विवाह का स्मरण भी करवाया है।[4] कुशललाभ ने राजा की पुत्री के नाम का उल्लेख नहीं किया है, पर नेमिचन्द और सुमति ने पुत्री का नाम क्रमशः कमलसेना[5] तथा कनकसुन्दरी[6] दिया है। 'उत्तराध्ययन वृत्ति' में वर्णित अगड़दत्त की कथा,[7] सुमति द्वारा विरचित अगड़दत्त रास[8] कुशललाभ कृत अगड़दत्तरास[9] में वीरमती भुजंगम चोर की बहन का नाम है।

6. अभंगसेन का वध–

कुशललाभ ने "अगड़दत्त रास" में चम्पानगरी से लौटते हुए मार्ग की अन्य कठिनाइयों के साथ अगड़दत्त द्वारा उसके पिता के हत्यारे अभंगसेन (सुभट) के वध का उल्लेख किया है।[10] यह प्रसंग अन्य कथारूपों में नहीं मिलता।

---

1. डॉ. के. सी. जैन - प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 3
2. रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर ग्रं. 27233, अगड़दत्त रास
3. पुहतउ वनह मंझारि, दीठी रंभ त्रिलोचना ॥22 ॥
   वंधुदत्त विवहारीउ, ते माहरउ लात ॥25 ॥
   —रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 1124 (अगड़दत्त मुनि चौपई)
4. भण्डारकर प्रा. वि. मंदिर, पूना, ग्रं. 605, चौ. 135-136
5. डॉ. के. सी. जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 170, (उत्त. वृत्ति)
6. रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 1124
7. डॉ. के. सी. जैन, प्राकृत जैन कथा - साहित्य, पृ. 170
8. रा. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 1124, चौ. 50
9. भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, पूना, ग्रं. 605, चौ. 94
10. वही, चौ. 235, 237

7. विद्याधर-मदनमंजरी प्रसंग—

कुशललाभ ने स्वकृत "अगड़दत्त रास" में बसन्तपुर की सीमा पर मदनमंजरी को पर-पुरुष के साथ रमण करते हुए बताया है, जिसे देखकर आकाश में उड़ता हुआ विद्याधर उसकी हत्या करने की सोचता है।[1] किन्तु तभी मदनमंजरी को सर्प डस लेता है और अगड़दत्त भी उसके साथ विलाप करने लगता है। अगड़दत्त के करुणार्द्र निवेदन पर विद्याधर मदनमंजरी को पुनर्जीवित करके नारी आचरण का संकेत करता है।[2] वसुदेव हिण्डी[3] और उत्तराध्ययन वृत्ति[4] में वर्णित कथाओं में विद्याधरयुगल का उल्लेख है तो भीम के अगड़दत्त रास में एक ही विद्याधर का उल्लेख है, जो अगड़दत्त को सयल राजा और कामुक मोह के दृष्टान्त से प्रतिबोधित करता है।[5] इस प्रकार कुशललाभ ने नारी जाति की कुटिलता को मानव जाति के माध्यम से ही स्पष्ट किया है, जबकि भीम ने इस प्रवृत्ति को जन्तु-समाज में भी व्याप्त बताकर इसका सामान्यीकरण किया है।

8. अगड़दत्त का दीक्षित होना—

कुशललाभ द्वारा वर्णित कथा में अगड़दत्त देवस्थान में मिले चोरों के नायक से अपना चरित्र सुनकर संसार की असारता का ज्ञान प्राप्त कर दीक्षित होता है, जबकि वसुदेव हिण्डी में अगड़दत्त दीक्षित होकर अपने चरित्र का स्वयं उद्घाटन करता है।

---

1. तेह तणी नारी छहजेह, अन्य पुरुष सिउ लुबधी तेह।
   ते विद्याधरि जाणी बात, करवा मांडिउ नारी घात ॥
   —भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, पूना, ग्रं. 605
2. वही, चौ. 257-259
3. डॉ. जे. सी. जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 169
4. वही, पृ. 170
5. वलीय विद्याधर भणई, तू सांभली भूपाल।
   कहु कथा कामिणी तणी, सुषि सुन्दर सुविसाल ॥350 ॥
   पाछलि एक राजा हतउ सयल हतउ तस नाम।
   राजा रुधि होती घणी, करइ राज अभिराम ॥351 ॥
   गोर सर्प्पनह सापिणी, क्रीड़ा करइ मनि रंगि।
   ते देषी नृप वितवह, हीयड़इ करह विचार।
   सापिणी पर नरस्युं रमइ धिग-धिग ए संसार ॥352 ॥
   —राज. प्रा. वि. प्र., जोधपुर, ग्रं. 27233

नेमिचन्द-विरचित "उत्तराध्ययन वृत्ति" में कवि ने अगड़दत्त को दीक्षा देने वाले ऋषि का नाम चारण ऋषि दिया है।[1]

9. शिल्प विधान—

भीम का अगड़दत्त रास पांच खण्डों में विभक्त है, जिनमें कुल 480 छंद (दूहा-चौपई) है। कुशललाभ ने ऐसा शिल्प ग्रहण नहीं किया है। उसने तो अन्य पूर्ववर्ती कवियों के शिल्प को ही अपनाया है। साथ ही उसने वसुदेव-हिण्डी, भीम, सुमति आदि की भांति काव्य में विस्तृत प्राकृतिक वर्णनों एवं नख-सिख-वर्णन को भी महत्व नहीं दिया है। उसने सरस्वती की आरंभ में वंदना तो की है पर धार्मिक दृष्टि का ही उसमें आचरण है।

उक्त अध्ययन के उपरान्त हम कुशललाभ की अगड़दत्त कथा में अन्य पूर्ववर्ती कथाओं के साथ निम्नलिखित साम्य एवं वैषम्य का अनुभव करते हैं—

साम्य—

1. अगड़दत्त रूपवान नायक है, जिस पर प्रत्येक नारी आसक्त है।
2. उपाध्याय (गुरु) ने उसे माता-पिता की आज्ञा-पालन का आचरण दिया।
3. परिव्राजक चोर का पता सात दिनों में लगा लाने तथा मदमस्त हाथी को वश में करने का बीड़ा अगड़दत्त ही उठाता है।
4. छह दिन तक भटकने के उपरान्त सातवें दिन परिव्राजक रूप में चोर को वह ढूंढ लेता है और उसको मारकर राजा के समक्ष उपस्थित होता है।
5. राजा उक्त दोनों साहसिक कार्यों के बदले अगड़दत्त का विवाह अपनी पुत्री से करता है।
6. मार्ग की कठिनाइयां एवं उन पर अगड़दत्त की विजय प्राप्ति।
7. विद्याधर द्वारा नायिका को जीवित करना तथा नारी की कुटिलता का अगड़दत्त को प्रतिबोध कराना।
8. देवस्थल पर चोरों के साथ नायिका का प्रणय एवं अगड़दत्त पर खड्ग-प्रहार तथा चोरों का दीक्षित होना।
9. रमणोपरान्त अगड़दत्त का दीक्षित होना।

---

1. डॉ. जे. सी. जैन - प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 169-170

वैषम्य—

1. अगड़दत्त का प्रदेश-गमन ।
2. मदनमंजरी एवं अगड़दत्त के विवाह का प्रसंग ।
3. अटवी में भुजंगम चोर को मारकर पुनः चम्पानगरी को नहीं लौटना ।
4. अपने पिता के हत्यारे अभंगसेन (सुभट) का वध ।
5. भीमसेन द्वारा अगड़दत्त को पुनः वसन्तपुर बुलवाना । नगर की सीमा पर माता-पिता द्वारा उसका स्वागत करना । मदनमंजरी के साथ अगड़दत्त का मार्ग में ही रुक जाना ।
6. नायिका एवं सरस्वती का नख-सिख वर्णन ।
7. पात्रों एवं स्थानों के नामों का अन्तर ।

सूक्ष्म दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो नामों का यह अन्तर विभिन्न कथा-रचयिताओं के बुद्धि-कौशल का चमत्कार प्रदर्शन मात्र है । धनंजय का अर्थ ही भुजंगम होता है और अन्य अर्थ अर्जुन भी । अतः धनंजय, भुजंगम अथवा अर्जुन नामों में कोई अन्तर नहीं । केवल पाठकों (श्रोताओं) को समझाने मात्र के लिये ऐसा किया गया है । मदनमंजरी, विषय और वीरमती भी एक ही अर्थ के बोधक नाम हैं ।

♦ ♦ ♦

10

वाचक कुशललाभ का जैन साहित्य को योगदान

जैन साहित्य की प्रायः सभी शैलियों को ग्रहण कर वर्तमान हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है। हेमचन्द्राचार्य (अभिधान चिंतामणि) स्वयंभू (पउम चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ, स्वयंभू छंद), देवसेन (श्रावकाचार), शालिभद्र (भरतेश्वर बाहुबली रास), आसगु (चन्दनबाला रास), जिनधर्म सूरि (रेवतंगीरि रास), सुमति गणि (नेमिनाथ रास), उदयवंत (गौतमरासा), विद्धण (ज्ञानपंचमी चौपई), दयासागर सूरि (धर्मदत्त चरित), ईश्वर सूरि (ललितांग चरित), ठकरसी (कृपण चरित्र), विद्याभूषण सूरि (भविष्यदत्त रास), रायमल (हनुमन्त चरित्र), जिनदास (जम्बूचरित्र), कल्याणदेव (देवराज बच्छराज चौपई), नन्द (यशोधर चरित), कर्मचंद (मृगावती चौपई), खुशालचन्द (हरिवंश पुराण), भूधरदास (पार्श्वपुराण, जैनशतक), बनारसीदास (अर्द्धकथानक, नाममाला), भैया भगवतीदास (चैतनकर्म चरित, मधुबिन्दुक चौपई)[1] आदि जैन साहित्य की प्रमुख मणियां है। इन मनीषियों ने जहां सुन्दर चरित काव्यों का निर्माण किया वहीं श्रेष्ठ शास्त्रीय एवं लोक-ढालों पर आधारित गीतियों का भी सृजन किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य जैन साहित्य का ही सुफल है।

जैन साहित्य की इन्हीं काव्यशैलियों को परिष्कृत और पल्लवित करने वाला एक अविस्मरणीय नाम है—वाचक कुशललाभ का। कुशललाभ ने अपने जीवन काल में माधवानल कामकंदला चौपई (वि.सं. 1616), ढोला-मारवणी चौपई (वि.सं.1617), जिनपालित जिनरक्षित, संधिगाथा (वि.सं. 1621), तेजसार रास चौपाई (वि.सं.1624), अगड़दत्तरास (वि.सं.1625), पार्श्वनाथ दशभव स्तवन (वि.सं. 1621),

---

1. कोष्ठक में सम्बन्धित कवियों की मात्र बहुचर्चित रचनाओं का ही नामोल्लेख किया गया है।

पिंगल शिरोमणि (वि.सं. 1635), स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तनव (वि.सं. 1638), श्रीपूज्यवाहण गीत (लिपिकाल वि.सं. 1647), गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द, नवकार छंद, महामाई दुर्गा सातसी, जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छंद (लिपिकाल वि.सं. 1734), स्थूलिभद्र, छत्तीसी, स्फुट कवित्त, भीमसेन हंसराज चौपई (वि.सं. 1643), शत्रुंजय यात्रा स्तवन (वि.सं. 1644), गुणसुन्दरी चौपई (?)[1] आदि छोटी-बड़ी अट्ठारह रचनाओं का निर्माण किया। इनके अतिरिक्त हंसदूत एवं ज्ञानदीप नामक दो रचनाओं की अपने अध्ययन के लिये प्रतिलिपियां कीं।

इन सभी रचनाओं के आधार पर कुशललाभ का जन्म खरतरगच्छ वंश में विक्रम संवत् 1590-95 के लगभग तथा मृत्यु वि.सं. 1655 के आसपास कूंती जा सकती है। आपके गुरु का नाम उपाध्याय अभयधर्म था। जैसलमेर (राजस्थान) के भाटी वंशीय रावल हरराज आपके आश्रयदाता एवं शिष्य थे। कवि ने अपने व्यापंक ज्ञान द्वारा अपने साहित्य को रोचकता और विविधता से संवारा है। कुशललाभ से पूर्व के प्रायः सभी जैन कवि परिव्राजक एवं भक्त हैं, पर आलोच्य कवि इन दोनों ही प्रवृत्तियों का अनुभवी है। माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला-गारवणी चौपई और पिंगलशिरोमणि ग्रंथों की रचना उसने मात्र अपने आश्रयदाता के कुतूहलार्थ ही लिखी, जबकि अन्य प्रेमाख्यानों एवं स्तोत्रों की रचना उसने स्वतंत्र रूप से की। कवि के इन दोनों अनुभवों से उसमें साहित्यिक ईमानदारी का प्रादुर्भाव हुआ है। उसमें क्लिष्टता की अपेक्षा सहजता और सरलतता का अनुभव किया जा सकता है।

जैन कवियों ने विविध विषयों पर लिखा। व्याकरण, छन्द विवेचन एवं चरित काव्य इनमें प्रमुख हैं। कुशललाभ ने "पिंगलशिरोमणि" में सर्वप्रथम एक साथ कोष एवं काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया। "पिंगलशिरोमणि में विवेचित प्रस्तार विधि वर्णन, गीत-प्रकरण तथा अलंकार विवेचन कुशललाभ की महती उपलब्धि है। सम्पूर्ण ग्रंथ में कवि ने 104 छन्दों, जिनमें 23 प्रकार के दूहों, 26 प्रकार की गाथाओं, 72 प्रकार के छप्पयों, 75 अलंकारों तथा 40 प्रकार के गीतों (डिंगल-राजस्थानी का छंद विशेष) का विशद विवेचन किया है। "उडिंगल-नाममाला" प्रकरण में कवि ने चालीस शब्दों के तीन सौ चालीस पर्याय दिये हैं। इस प्रकार कुशललाभ कृत पिंगल शिरोमणि का न केवल जैन साहित्य में ही अपितु हिन्दी-रीति-परम्परा एवं अनेकार्थ कोश परम्परा में भी महत्वपूर्ण योगदान है। राजस्थानी साहित्य में तो यह

---

1. कामा (भरतपुर) के महाराज के निजी संग्रहालय में यह प्रति उपलब्ध है तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में इसकी प्रतिलिपि सुरक्षित है।

इस परम्परा का प्रथम ग्रंथ है।

कुशललाभ की उक्त वर्णित रचनाओं को मुख्य रूप से इन चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) प्रेमाख्यानक रचनाएं, (2) जैन भक्ति सम्बन्धी रचनाएं, (3) पौराणिक साहित्य और, (4) रीति सम्बन्धी रचना। इन सभी वर्गों की रचनाओं के शिल्प की अपनी विशेषताएं हैं। अधिकांश प्रेमाख्यानक रचनाओं में अधिकारिक कथा का आरंभ प्रायः किसी निःसंतान राजा अथवा पुरोहित द्वारा संतान प्राप्ति के प्रयत्न वर्णन से हुआ है। देवी-देवता अथवा अन्य पवित्र स्थल की "जात" देने पर उस राजा के यहां पुत्र या पुत्री का जन्म हुआ है। युवा होने पर किसी अपराध में अपने पिता से कहा सुनी होने पर या राजाज्ञा से नायक को घर छोड़ना पड़ा है। इसी निष्कासन से नायक के वैशिष्ट्य द्वारा कवि ने इन रचनाओं में प्रेमतत्व को उभारा है।

कुशललाभ ने अन्य समकालीन जैन कवियों की तुलना में नायक-नायिकाओं में प्रेम का आरंभ प्रत्यक्षदर्शन और रूप-गुण-श्रवण द्वारा कराया है। नायक-नायिका में प्रेमोद्दीपन एवं उनके संयोग में तोता, मंत्रीपुत्र, भाट, खवास, सखियां सहायक हुए हैं। नायिका की प्राप्ति के पश्चात् जब नायक पुनः अपने निवास को लौटता है तो मार्ग में उसका प्रतिनायक के साथ युद्ध दिखलाया है, जिसमें नायक विजयी होकर जैसे ही आगे बढ़ता है नायिका की मृत्यु हो जाती है।[1] इसके पश्चात् नायिका को पुनर्जीवन योगी-योगिनी[2] अथवा विद्याधरों[3] द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार के कथा-संयोजन से कुशललाभ ने जैन कथा-साहित्य को सुघर शिल्प प्रदान किया है।

जैन कथानक सम्बन्धी रचनाओं में नायक के स्वदेश लौटने पर किसी गुरु ने उसे दीक्षित किया है। तदुपरान्त नायक अपने बड़े पुत्र को राज्य सौंप कर संन्यासी बनते चित्रित किया गया है, जबकि जैनेतर रचनाओं में सुखमय पारिवारिक जीवन के साथ कथा का अन्त किया गया है। इस प्रकार कुशललाभ मध्यकाल का ऐसा जैन कवि है जो राज्याश्रित था। उसने जैन और जैनेतर विषयों पर रचनाएं की, किन्तु उसने मात्र जैन-धर्म को ही स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। उसने जन-भावनाओं एवं तत्कालीन परिवेश को भी पहचाना और उनका सूक्ष्मता के साथ निरूपण भी

1. ढोला मारवणी चौपई, अगड़दत्त रास, भीमसेन हंसराज चौपई।
2. ढोला मारवणी चौपई और भीमसेन हंसराज चौपई।
3. अगड़दत्त रास, तेजसार रास, भीमसेन हंसराज चौपई।

किया। उस युग के समाज में प्रचलित अलौकिक शक्तियों के प्रति आस्था, ज्योतिषियों की भविष्य-वाणियों में जनता की श्रद्धा, स्वप्नफल और 'शकुन' के प्रति आस्थाओं को कवि ने अत्यन्त सरस और काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। तत्कालीन जन-समाज में प्रचलित पूर्व कर्म के प्रति श्रद्धा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पैले भव पाप में किया, तो तुझ बिण इतरा दिन गया।
सैं गुण बात करे, बाषाण, जीवन जन्म आज सुप्रमाण ॥
—ढोला मारवणी चौपई, चौ. 557

जैन कवियो का मूल लक्ष्य शम की प्राप्ति करना है। कारण, ये कवि पहले श्रावक और धर्मप्रचारक हैं, तदुपरान्त साहित्यकार। धार्मिक उपदेशों के साथ साहित्यिकता का आगम तो जैन साहित्य की एक सहज घटना है। फिर भी जैन साहित्य को आद्यन्त शान्त रस प्रधान नहीं माना जा सकता। प्रत्येक रचना का आरंभ शृंगार की सूक्ष्म प्रवृत्तियों से हुआ है। शृंगार के माध्यम से वैराग्य का उपदेश ही इन रचनाओं में दिया गया है। कुशललाभ की स्थूलिभद्र छत्तीसी, जिनपालित जिनरक्षित संधिगाथा, अगड़दत्त रास, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओ में वर्णित शृंगार जैन साहित्य में शृंगार रस चित्रण का एक नया आयाम है—

रंभ गाभ जिसी जुग जंघ, उदित बिल्व सम उरज उत्तंग।
अधर पक्व बिंबा अणुहारि, किर पूतली चित्र आकार।
—भीमसेन हंसराज चौपई, चौ. 134

कुशललाभ जैन धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने साहित्य में भयानक, वीर, रौद्र, वीभत्स रसों को भी यथा-प्रसंग स्थान दिया है। जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा से भयानक रस सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

सीहणि नीयरि ऊससह जी, करि जब कइ करवाल।
आवी पुरुषां ऊसरइ जी, रुप कीयउ विकराल ॥

× × ×

वेइ बोलइ बीहता जी, सामिणी अम्ह साधारि।
कह्यउ तुम्हारउ कीजसी जी, अम्ह जीवतां उगारि ॥

जैन साहित्य की भाषा प्राकृत, अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती रही है। इन्हीं भाषाओं में उन्होंने विभिन्न विषयों पर साहित्य लिखा। कुशललाभ पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख जैन एवं सामन्तीय संस्कृति वाले नगर

जैसलमेर का निवासी था। उसके साहित्य में यों तो जैन रचयिताओं की सभी भाषाओं का पुट मिलता है, किन्तु मुख्य रूप से कुशललाभ की रचनाओं को भाषा की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है—(1) शुद्ध डिंगल या राजस्थानी की रचनाएं, जैसे—महामाई दुर्गासातसी, जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छंद तथा पिंगलशिरोमणि और,

(2) जूनी गुजराती अथवा प्राचीन राजस्थानी की रचनाएं। इस वर्ग में उक्त तीन रचनाओं के अतिरिक्त शेष रचनाओं को समाहित किया जा सकता है। इनमें यथा-प्रसंग प्राकृत की गाथाओं, संस्कृत के श्लोक, छंद आदि शास्त्रीय बंधों तथा लोक प्रचलित ढालों का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार जैन साहित्य में कुशललाभ की विशिष्टता है विषयानुकूल भाषा का प्रयोग। जब वह रौद्र रस से समन्वित भावना को प्रकट करता है तो लिखता है—

"कालिका दूज ब्रह्म मंड कीधा, रोहिर भषण जोगवीरिधा।
गड़मड़इ सिंधु पूरंति ग्राह, अरिही देव अरि दलण आह ॥

शृंगार के क्षेत्र में यही शब्दावली इतनी अधिक मधुर बन जाती है कि उसे पढ़ने मात्र से रोमांच होने लगता है—

आव्यो मास असाढ़ झबूके दामिनी रे,
जोवइ जोवइ प्रीयड़ा वाट सकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकि प्रीउ प्रीउ उचरइ रे
वरसइ घण बरसाल सजल सरवर झरइ रे ॥
(पूज्यवाहण गीत, गाथा 61)

जैन चरित काव्यों में प्रयुक्त भाषा ने कवि कुशललाभ को लोकप्रियता दी है। "पिंगलशिरोमणि" कवि की एक शास्त्रीय रचना है, अतः उसमें कवि के पाण्डित्य का पूर्ण परचिय मिलेगा।

इस प्रकार कुशललाभ एक सांस्कृतिक प्रदेश राजस्थान की सामासिक संस्कृति का कवि था, जिसने अपनी बहुज्ञता द्वारा साहित्य को संकुचित मर्यादाओं तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे युगानुरूप जनरूचि के अनुसार जैनेतर विषयों को भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया तथा इन विषयों से जैन धर्म और संस्कृति को अन्य जैन रचनाकारों की तुलना में व्यापक फलक प्रदान किया। धार्मिकता की अपेक्षा साहित्यिक मार्मिकता एवं शास्त्रीयता से उसे संवारा। इन्हीं सब कारणों से जैन साहित्य

में उपाध्याय अभयधर्म के शिष्य वाचक कुशललाभ का सदैव महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा। कुशललाभ के साहित्य की मार्मिकता के विषय में वेलि क्रिसण रुक्मिणी के रचयिता पृथ्वीराज राठौड़ को सम्राट अकबर द्वारा कही गयी ये पंक्ति बड़ी सटीक है कि,"तुम्हारी वेलि को तो ढोला का करहला (ऊंट) चर गया।'[1]

कुशललाभ के साहित्य की इस मार्मिकता का राज़ है लौकिक अनुभूति को अपनी विषय सामग्री बनाना। इसी अहसास के कारण कुशललाभ की रचनाओं में अन्य जैन कवियों की तुलना में मध्यकालीन आचार-विचार, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, वेशभूषा, लोकाचार एवं विश्वासों का सुन्दर चित्रण हुआ है। ये सभी वर्णन सामन्ती एवं जैन संस्कृति से संबंधित है, क्योंकि कुशललाभ का साहित्य विशेष रूप से इन दो वर्गों से ही संबंधित है।

◆◆◆

---

1. सं. स्वामी नरोत्तमदास - ढोला मारू रा दूहा, प्राक्कथन (पाद टिप्पणी), पृ. 1, वि.सं. 2011

11

तेरापंथ : रचनाकार और रचनाएं

भारत सदैव से ही एक धर्मनिरपेक्ष देश रहा है। यहां जब-तब विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा और उनसे सम्बन्धित साहित्य का विपुल मात्रा में सृजन हुआ। सूफी-सम्प्रदाय इसी परम्परा का एक गैर भारतीय सम्प्रदाय है, जिसने हिन्दी साहित्य के निर्माण में अपूर्व योगदान दिया। हिन्दी साहित्य को पल्लवित करने वाली एक महत्वपूर्ण भारतीय धार्मिक विचारधारा जैनियों की रही है। जैनियों ने प्राकृत-अपभ्रंश और राजस्थानी में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं लिखकर साहित्य की स्रोतस्विनी को सदैव प्रवाहित रखा है। अपने विशिष्ट साहित्य-बंधों के कारण बौद्धों की चर्या-पद शैली, नाथों-सिद्धों की वाणी-शैली, सूफियों की मसनवियों की भांति ही जैन चरित-काव्य शैली का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

जैन धर्म में प्रमुखतः दो सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दिगम्बर सम्प्रदाय की तुलना में श्वेताम्बरियों की शाखा-प्रशाखाएं अधिक हैं। इनका मूल आधार उनकी साधना (उपासना) पद्धति है। जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय से ही पृथक् हुआ एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है—"तेरापंथ"। इस पंथ का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। श्वेताम्बरी जैनियों के स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रघुनाथजी के शिष्य कंठालिया ग्रामवासी भीखणजी (आचार्य भिक्षु) तेरापंथ के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं। अपने गुरु रघुनाथ जी के साथ कुछ मतभेद हो जाने से उन्होंने इस पंथ की स्थापना वि.सं. 1817 में की।[1] इस प्रकार "तेरापंथ" का इतिहास कुल 233 वर्षों का है। दो शताब्दियों में इस पंथ में कुल नौ आचार्य हुए। इस पंथ के वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ

1. "परम्परा" - राजस्थान साहित्य का मध्यकाल विशेषांक - श्री अगरचंद नाहटा का लेख - "मध्यकालीन राजस्थानी जैन साहित्य", पृ. 125

युवचार्य हैं। आचार्य तुलसी ने स्वतः यह पद उन्हें प्रदत्त किया तथा तेरापंथ समाज ने उन्हें "गणाधिपति" पद से विभूषित किया।

तेरापंथ के संस्थापक आचार्य भिक्षु की यह दृढ़ मान्यता थी कि बिना अनुशीलन के सामूहिक व्यवस्था ठीक नहीं बैठ सकती और अव्यवस्था में कभी सम्यक् साधना सध नहीं सकती। इसीलिये तेरापंथ मर्यादाओं का पालन न करने वाले साधु-साध्वियों पर समुचित कार्यवाही को भी अनुमति देता है। आचार्य भिक्षु द्वारा तेरापंथ की कतिपय दार्शनिक मान्यताएं इस प्रकार हैं—

1. साध्य और साधन दोनों शुद्ध होने चाहिये।
2. जो कार्य करना साध्य के अनुकूल नहीं है, उसे करवाना, करने वाले का अनुमोदन करना भी साध्य के अनुकूल नहीं हो सकता।
3. भगवान की आज्ञा किस कार्य में है, मात्र उसी कार्य में धर्म है। धर्म हृदय-परिवर्तन में है, दबाव में नहीं, प्रलोभन में नहीं।
4. अयोग्य शिष्य न बनाये जाये।
5. वर्तमान आचार्य अपने गुरुभाई अपने शिष्य को उत्तराधिकारी चुने, उसे सब साधु-साध्वियाँ सहर्ष स्वीकार करें और सभी एक ही आचार्य की मर्यादा में रहें।

इस प्रकार वैचारिक दृष्टि से तेरापंथ एक आचार, एक विचार, और एक आचार्य की विचारधारा का पोषक है। इसी मर्यादा में वह एक प्राणवान संघ है। इसका दर्शन तर्क-विज्ञान पर आधारित है। अतः यह युगानुरूप एवं परिस्थितिनुकूल परिवर्तन का भी समर्थक है। आचार्य तुलसी द्वारा प्रतिपादित अणुव्रत दर्शन इसी दिशा में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

जैन धर्म से सम्बन्धित यह पंथ शुद्ध रूप से राजस्थानी है। इसका जन्म राजस्थान में हुआ। पोषण भी राजस्थान में ही हुआ। अतः इस संघ में प्रव्रजित साधु-साध्वी और अनुयायी भी प्रायः राजस्थान के ही रहे। अतः इस संघ का प्रवचन, श्रावकाचार आदि में यहीं की भाषा राजस्थानी का प्रयोग हुआ। अपने संघ की धार्मिक मान्यताओं और भक्ति-सम्बन्धी साहित्य का प्रवचन इस पंथ के प्रायः सभी आचार्यों, मुनियों, साधु-साध्वियों ने किया। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में रचित है। इनमें सर्वाधिक रचनाएं आचार्य भिक्षु, जयाचार्य, आचार्य तुलसी, आचार्य

महाप्रज्ञ, मुनि नथमलजी, मुनि सोहनलालजी, मुनि बुधमल जी, मुनि चौथमल जी, मुनि मोहनलाल जी "आमेट", मुनि महेन्द्र जी, मुनि सुखलाल जी, साध्वी कल्पलता जी एवं साध्वी जिनरेखा जी की मिलती हैं।[1] इन तेरापंथी रचयिताओं की उल्लेखनीय रचनाएं हैं—ब्याहुलो, गणधर सिखावणी, कालवादी री चौपाई, टीकमदोसी री चौपाई, भिक्खु दृष्टान्त, सुदर्शन चरित, जबू चरित आदि (आचार्य भिक्षु), झीणी चर्चा, कीर्तिगाथा, अमर गाथा (जयाचार्य जी), कालू यशोविलास, माणक-महिमा, जालिम चरित्र, नंदन निकुंज (आचार्य तुलसी), फूल लारै कांटौ (युवाचार्य महाप्रज्ञ), उणियारो, जागण रौ हेलो (मुनि बुधमल जी), तथ'र कथ (मुनि मोहनलालजी, आमेट), गीतों का गुलदस्ता, निर्माण के बीज, राजस्थानी गीत (मुनि सुखलाल जी) इत्यादि।

इन रचनाकारों की कतिपय उल्लेखनीय रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. सुदर्शन चरित—

तेरापंथ के संस्थापक आचार्य भीषणजी (भिक्षु) की यह एक महत्वपूर्ण रचना है। आचार्य भिक्षु ने वैसे तो गद्य और पद्य में अनेक रचनाएं रचीं, जिनका मूल विषय "तेरापंथ" की व्याख्या है। किन्तु आलोच्य कृति में आचार्य प्रवर ने जैन साहित्य में प्रचलित ऐतिहासिक सुदर्शन चरित्र को अपना विषय बनाया है। यद्यपि काव्य का लक्ष्य जैन शैली के अनुरूप शील का निर्देशन ही है किन्तु सहज काव्यात्मक अभिव्यक्ति ने उसे जनप्रिय बना दिया है।

चंपानगरी में सेठ ऋषभदास का पुत्र सुदर्शन रुपवान, गुणवान और शील-सम्पन्न युवक था। जिन धर्म में निरुपित श्रावक-व्रतों का वह अनुपालक था। सुन्दरी मनोरमा उसकी भार्या थी। बार-बार उपसर्ग आने पर भी सुदर्शन शील भ्रष्ट नहीं होता है। शीलसंपन्न होकर धर्मघोष स्थविर के पास वह दीक्षित होता है। अन्त में निर्वाण को प्राप्त होता है।

आचार्य भिक्षु ने पूर्वदीप्ति शैली में शीलव्रत की सुन्दर व्याख्या की है। सुदर्शन रत्नत्रय से पूर्ण प्रतिष्ठित चरित्र है। इसीलिए उसके गुणों को सुनकर कायर भी शूर-वीर हो जाते हैं।

---

1. विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य है - "तुलसी प्रज्ञा" (अनुसंधान त्रैमासिकी) में प्रकाशित मुनि सुखलालजी की लेख शृंखला "तेरापंथ" के आधुनिक राजस्थानी संत साहित्यकार

कायर सुण हुवै सूरमा, सूरा पिण होय अति ही अडोल ।
सुदर्शन गुण सांभळी, पाले शील अमोल ॥
सुदर्शन शील पालने गयो पंचमी गति प्रधान ॥[1]

चरित्र नायक सुदर्शन की भार्या मनोरमा भी शील-सौंदर्य, सती और श्रावक व्रत से परिपूर्ण हैं ।[2] शील धर्म की अभिव्यक्ति करने वाली इस जैन कृति का अंगीरस वीर है । कवि ने यथा-प्रसंग शृंगार, वीभत्स, शान्त, रौद्र-रसों का प्रयोग कर अपने कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाया है । इस उद्देश्य हेतु उसने सुन्दर सूक्तियों का भी प्रयोग किया है, यथा—

1. विद्या अस वर नार संपद हेह शरीर सुख ।
   मांग्या मिले नहीं च्यार पूर्व सकृत कीधा विना
   (अध्याय 2, छन्द ।)

2. हिवे नारी जात छै तेहनो कदे न करुं विश्वास ।
   (ढाल 5, दूहा-6)

2. द्रोपदी रो बखाण—

यह रचना भी आचार्य भीषणजी की है । महाभारत के द्रोपदी आख्यान से भिन्न जैन-आचार संहिता के अनुरूप कवि ने द्रोपदी के पूर्व जन्म, द्रोपदी के जन्म, पांच पांडवों से विवाह, नारद का तिरस्कार जनित प्रतिरोध, द्रोपदी-अपहरण, युद्ध, द्रोपदी की वापसी, द्रोपदी की संयम-तपस्या और देह-त्याग, पंच-पाण्डवों की दीक्षा आदि घटनाओं के माध्यम से इस की कथा प्रस्तुत की है ।

कवि ने इन सभी घटनाओं का चित्रण 33 ढालों में किया है । अभिव्यंजना अति सरल, सहज एवं आकर्षक हैं । रचना में वर्णित घटनाएं नैतिक मानदण्डों और आदर्शों की पुनर्स्थापना करती हैं । साथ ही रचना सामयिकता प्रदान करने में भी सहायक होती है । अतः उद्देश्य और प्रस्तुति की दृष्टि से यह रचना महती है ।

3. झीणी चरचा—

तेरापंथ के छठे और प्रबुद्ध आचार्य श्री जयाचार्य ने तेरापंथ के धर्म-दर्शन एवं

---

1. प्रथम ढाल, दूहा 5-6
2. सती मनोरमा नार
   पाले श्रावक नां व्रत चार, —ढाल 2, दूहा 18

मुनि वृतान्तों से सम्बन्धित अनेक श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन किया। इनमें से एक महत्वपूर्ण राजस्थानी कृति है "झीणी रचना"। कृति का शीर्षक ही इस बात को प्रमाणित करता है कि इसमें जैन धर्म से सम्बन्धित "तेरापंथ" के झीने (सूक्ष्म) तत्वों का विवेचन किया गया है। आलोच्य रचना में 22 गीत संकलित हैं। सभी की विषय-वस्तु सैद्धान्तिक है। तेरापंथ के अनुसार इन गीतों में नौ पदार्थों (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवरा, निर्जरा, बंध और मोक्ष) तथा छह द्रव्य (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकोशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय, और जीवास्तिकाय) का अति सरल भाषा में वर्णन प्रस्तुत हैं। उदय, उपराम, क्षय और क्षयोपशम-निष्पन्न किन-किन कर्मों का होता है, इस प्रश्न का सहज भाषा में कवि ने इस प्रकार समाधान किया है—"

"उदय-निपन कर्म आठनो, उपशम-निपन एक सार।
खायक-निपन आठां तणो, खयोपराम निपन च्यार ॥"[1]

जयाचार्य ने इसकी रचना वि.सं. 1912 से 1916 के बीच की। यह तथ्य कई ढालों के अन्त में दिये गये रचनाकाल के आधार पर ज्ञात होता है।[2]

इन ढालों के उपरान्त इस कृति की विदुषी संपादिका साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा जी ने जयाचार्य निर्मित झीणोज्ञान, अणुव्रत ना भांगा, तात्विक ढालां का सम्पादित रूप भी प्रस्तुत किया है।

4. अमर-गाथा—

जयाचार्य की रचनाओं का एक अमूल्य संकलन "अमर गाथा" शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ है। इसका संपादन मुनि नवरत्नमल, मुनि मधुकर, साध्वी कल्पलता, साध्वी जिनरेखा और श्रीचंद रामपुरियाजी ने किया है।

इस संकलन में कवि श्री जयाचार्य की चौदह रचनाएं संपादित हैं-सतजुगी चरित, हेम नबरसौ, हेम चौढालियो, सरुप नवरसो, सरुपविलास, भीमविलास, मोतीजी

---

1. ढाल 1/32; 5/43, 54; 10/40, 106; 12/10, 119; 13/90, 140; 16/13, 157; 18/12, 170; 22/50, 207
2. उदय निष्पन्न भाव आठों कर्मों का, उपशम निष्पन्न भाव : एक मोहनीय कर्म का, क्षय निष्पन्न भाव आठों कर्मों का और क्षयोपशम निष्पन्न भाव चार घात्य कर्मों का होता है—
—ढाल 3, दूहा 3

रो पंचढालियो, शिवजी रो चौढालियो, कर्मचंद गीतिका, शान्तिविलास, उदयचंदजी रो चौढालियो, हरख चौढालियो, हस्तूजी-कस्तूजी रो पंचढालियो, सरदारसुजश।

इन 14 रचनाओं के अतिरिक्त इस संकलन में परिशिष्ट रूप में सतजुगी रो पंचढालियो और तेजीराम जी रो चौढालियो नामक दो अन्य रचनाएं भी संकलित हैं।

इन कृतियों के माध्यम से कवि ने अपने समय के मूर्धन्य मुनियों, आचार्यों, साधु-साध्वियों के तेरापंथ से संबंधित दर्शन को स्पष्ट किया गया है। परिशिष्ट की रचनाओं के लेखक मुनि हेमराज हैं जो आचार्य भिक्षु के शासनकाल में वर्तमान थे। इस प्रकार ये रचनाएं भी जैन आध्यात्मिक दृष्टि को प्रस्तुत करने वाली है।

5. कालूयशोविलास–

तेरापंथ के नौवें और वर्तमान गणाधिपति आचार्य तुलसी की यह एक महत्वपूर्ण रचना है। कालू गणी की आचार्य तुलसी पर अतीव अनुकंपा थी। उनके साथ रहकर उन्हें "तेरापंथ" को समझने का एक लम्बा समय मिला। उनका अभाव आचार्य तुलसी के लिये असहाय था। ऐसे महान् आचार्य गुरु के जीवन की सहज श्रेष्ठता को लिपिबद्ध करना ही इस कृति का प्रमुख लक्ष्य है।

काव्य रूप की दृष्टि से इसे महाकाव्य कहा जाना चाहिये। संपूर्ण रचना में कालू गणी के जीवन की आरंभ से अन्त तक की विविध घटनाओं का ब्यौरेवार वर्णन हुआ है। यह विवरण छह उल्लासों और पांच शिखाओं में समाहित है। प्रथम उल्लास में मंगलाचरण आदि के साथ कालू गणी के जन्मादि, दीक्षा, मघवा गणी के साथ घनिष्ठ संबंध आदि का परिचय दिया गया है। द्वितीय उल्लास में कालू गणी की सन्निधि में जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी का आगमन, नाबालिग दीक्षा का प्रतिरोध, चातुर्मास में दीक्षा का विरोध एवं शमन का ब्यौरा है। तृतीय उल्लास में कालू गणी की उत्कृष्ट सहिष्णुता, लाडनूं में आचार्य तुलसी की दीक्षा सरदारशहर चातुर्मास और दीक्षा प्रसंग को दर्शाया गया है। चौथे उल्लास में आचार्य तुलसी की पोषाल, कालू गणी-आचार्य तुलसी का मधुर संवाद, जंगल वर्णन, कालू गणी के अन्तिम वर्षों में सम्पन्न दीक्षाओं का वर्णन अंकित हैं। पंचम उल्लास में दीक्षा महोत्सव के प्रसंग में भ्रान्त धारणाएं और उनका निराकरण, मालवा में विरोधी वातावरण का निर्माण, कालू गणी की उंगली में प्राणहारी वेदना और उसकी सहनशीलता तथा छठे उल्लास में चातुर्मास हेतु गंगापुर पदार्पण, व्रणवेदना का विस्तार, लच्छीराम जी वैद्य के साथ

औषधि संबंधी विमर्श, साध्वी प्रमुखा श्री कानकुमारी जी का स्वर्गवास, युवाचार्य पद प्रदान हेतु पूर्व तैयारियां, युवाचार्य और संघ को शिक्षा, कालू गणी का स्वर्गवास, मातुश्री की साहस सम्पृक्त मनः स्थिति का वर्णन हुआ है ।

कवि ने संपूर्ण रचना में घटनाओं का संयोजन कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है कि पात्रों की चरित्रगत विशेषता स्वतः उद्घाटित होती चलती है । अपनी अनुभूति को व्यंजित करने हेतु कवि आचार्य तुलसी ने राजस्थानी भाषा को माध्यम बनाया है। इस अभिव्यक्ति को जनप्रचलित अंग्रेजी और फारसी शब्दों तथा आलंकारिक-मुहावरेयुक्त भाषा ने और अधिक संप्रेषणीयता प्रदान की है ।

6. माणकमहिमा—

यह भी आचार्य तुलसी द्वारा रचित कृति है । कवि ने इसका सृजन वि.सं. 2013 में सरदारशहर में किया। आचार्य तुलसी ने इस रचना में तेरापंथ के छठे आचार्य माणक गणी के जीवन चरित्र को अभिव्यक्त किया है । साथ ही, प्रसंगवश तेरापंथ के आदिप्रवर्तक आचार्य भिक्षु से लेकर वर्तमान अधिशास्ता आचार्य तुलसी (आलोच्य कृति के रचयिता) तक का विवरण भी कवि ने प्रस्तुत किया है ।

कृति का आरंभ डाकुओं द्वारा हुकमचंदजी की नृशंस हत्या की घटना से होता है । पिता की मृत्यु के बाद माणकलाल जी का लालन-पालन उनके भाई लिछमनदास जी ने संभाला । आरंभ से ही बालक माणक की भक्ति के प्रति निष्ठा और जयाचार्य की कृपा से उन्हें दीक्षित किया गया। लाडनूं शहर के बाहर एक भव्य समारोह में दीक्षा संपन्न हुई । तदुपरांत रचना में जयाचार्य का सान्निध्य और उनके आचार्य पद की घटनाओं का उल्लेख है । साढ़े चार वर्ष के अल्प शासन काल के पश्चात् ढाल गणी के आचार्य पद ग्रहण के साथ ही ग्रंथ की समाप्ति है ।

आलोच्य रचना लघु आकार की है । उसमें मात्र इक्कीस गीतों में माणक गणी के चरित्र को निरूपित किया गया है ।

7. तथ'र कथ—

मुनि मोहनलाल "आमेट" की यह एक उल्लेखनीय काव्य रचना है । आदर्श साहित्य संघ चुरू ने 1971 ई. में प्रकाशित इस काव्यकृति में मुनिजी की 134 कविताएं संकलित हैं । कविताओं का मूल विषय तेरापंथ-दर्शन है जो कृति के शीर्षक से भी स्पष्ट है । कवि ने बेबाक दृष्टि से की वास्तविकता और कथनी के प्रति निष्कर्ष दिये

है। इन काव्याभिव्यक्तियों में कवि की दृष्टि जगत् में व्याप्त द्वन्द्व और द्वैत पर अधिक केन्द्रित रही है। "उनकी काव्य-सर्जना के मूल में वह अद्वैतमूलक दृष्टि है, जो सारे दृश्यमान भेदों को भेदकर अभेद का दर्शन कराना चाहती है।"[1] वे समकालीन घटनाओं का वर्णन अंधकार और प्रकाश के प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

अंधेरो पी'र
दिवलो करयो
आंगणै नै सेंचनण
पण सुवारथी मिनख
जोत ने नुतों दियौ
क्यूं'क
परकास'र पाप में
अणबण है। (पृ.24)

तेरापंथ से सम्बन्धित आचार्यों, मुनियों, साधु-साध्वियों द्वारा रचित उल्लेखनीय साहित्य है। यह गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में है। दृष्टान्त रूप में इन्होंने जहां राजस्थानी गद्य को संस्मरणात्मक साहित्य की परम्परा प्रदान की वहीं जयाचार्य ने "उपदेशरत्न कथाकोश" के माध्यम से प्राकृत और अपभ्रंश की जैन कथाकोश परम्परा को जीवित रखा।

तेरापंथ मूलतः श्वेताम्बर जैन धर्म का अंग है, अतः सम्बन्धित सभी रचनाओं के विषय तत्सम्बन्धी दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट करने वाले हैं। इन विषयों की अभिव्यक्ति इन कवियों ने मुक्तक और प्रबन्ध शैली में की है। अपने चरित्र की प्रस्तुति वर्णनात्मक शैली में अधिक की है।

वैसे तो इन रचनाओं का प्रमुख रस शान्त है किन्तु कथा विस्तार एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिये शृंगार, करुण एवं वीर रस का बहुलता के साथ प्रयोग हुआ है। यथाप्रसंग अनुकूल वीभत्स, भयानक, रौद्र दृश्यों के भी स्तुत्य वर्णन देखने को मिलते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका हैं कि तेरापंथ 233 वर्ष पुराना है तथा उसका उद्गम प्रतिक्रिया का परिणाम है। अतः अपने सिद्धान्त और मान्यताओं के अनुकूल ही इस

---

1. जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं - तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान, पृ. 90

साहित्य में नवीन परिवेश का भी उल्लेख हुआ है। संसार की प्रत्येक वस्तु को जानना जीवन का लक्ष्य होना चाहिये—

सुखी-दुखी
भण्या-अणभण्या
जड़-चेतण ने
गत'र गत री परतीत
बा पगां पड़ी धूळ
मंजळ री बभूत है।

इन रचनाकारों के प्रिय छंद, ढाल, दूहा, सोरठा, आर्या, लावणी, कलश, यतनी, गीतक, भुजंगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मोतीदाम, आदि तथा प्रिय अलंकार अनुप्रास, वयणसगाई, सादृश्यमूलक अलंकारों के साथ यमक, लोकोक्ति, अनन्वय, उदाहरण, संदेह आदि अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

भाषा की भावानुकूलता इन रचनाओं और रचनाकारों की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती हैं। नादसौंदर्य, ध्वन्यात्मकता ने हर समय भाषा का साथ निभाया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तेरापंथ की राजस्थानी रचनाओं का काव्य-सौष्ठव सम्पन्न है। जनरुचि के अनुकूल भाषा, शब्दावली, छन्द और अलंकारों ने इन दार्शनिक धार्मिक रचनाओं में साहित्यिकता का संचार किया है। ये रचनाएं न केवल तेरापंथ अपितु राजस्थानी साहित्य की अमूल्य थाती है।

♦♦♦

परिशिष्ट-ग्रंथसूची

(क) आधार ग्रंथ—

1. सं. भंवरलाल अगरचंद नाहटा-ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, बीकानेर
2. सं. हंसविजय जैन-विविध पूजा संग्रह, अहमदाबाद
3. सं. मोहनलाल दलीचंद देसाई-आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक 7, जीवनचंद सकरचंद जवेरी, गोपीपुरा, सूरत
4. सं. चीमनलाल दलाल-प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह
5. गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, अंक 13-प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह
6. सुरसुंदरी रास-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान ह.ग्र. 27380
7. लीलावती चौपई-वही, ग्रंथांक 3500
8. सं. भवरलाल नाहटा-पद्मिनीचरित्र चौपई-सार्दूल रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर
9. बछराज चौपई-श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर, अजमेर
10. तेजसाररास चौपई-रा.प्रा.वि.प्र. जोधपुर, हं.ग्रंथांक 26546
12. उत्तमकुमार चरित्र चोपई-सार्दूल रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर
13. महामाई दुर्गा सातसी-एल.डी.इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलोजी, अहमदाबाद ग्रं.ला.द. 2493
14. पद्मावती छंद-विश्वम्भरा, बीकानेर, वर्ष 8, अंक1
15. भारती अथवा भगवती छंद-एल.डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद
16. मोहनलाल दलीचंद देसाई-गुर्जर कविओ, भाग1, 3
17. स्थूलिभद्र काकादि-रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर (प्रकाशित)

18. अगड़दत्तरास (कुशललाभ)-भण्डारकर प्राच्यविद्या मंदिर, पूना ह.लि.ग्रंथ 605
19. आचार्य तुलसी-कालू यशोविलास, जैन विश्वभारती, लाडनूं
20. वही-माणक महिमा, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, चुरु
21. झीणी चरचा, जैन विश्वभारती, लाडनूं
22. मुनि मोहनलाल, आमेट- तथ'र कथ
23. पिंगल शिरोमणि-परम्परा, राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, भाग 13
24. साहित्यसार-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
25. जयाचार्य-अमरगाथा-जैन विश्वभारती, लाडनूं

(ख) संदर्भ ग्रंथ—

26. लक्ष्मीनारायण गर्ग-संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस
27. देवेन्द्र कुमार जैन-अपभ्रंश भाषा और साहित्य
28. प्रो.म.र. मजमूदार-गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, आचार्य बुक डिपो, बड़ोदरा
29. साहित्यदर्पण-विश्वनाथ-चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
30. डा. शिवस्वरूप "अचल"-राजस्थानी गद्य साहित्यः उद्भव और विकास
31. डा. रामगोपाल गोयल-राजस्थानी के प्रेमाख्यानः परम्परा और प्रगति
32. श्री चंद जैन-जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पंचशील, जयपुर
33. हस्तीमल मेवाड़ी-जैन आगम के अनमोल रत्न
34. सोम प्रभाचार्य-कुमारपाल प्रतिबोध
35. दशरथ शर्मा एवं दशरथ ओझा- रास एवं रासान्वयी काव्य, जयपुर
36. गौरीशंकर हीराचंद ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास
37. पश्चिम भारत की यात्रा-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
38. जगदीशसिंह गहलोत-मारवाड़ राज्य का इतिहास
40. डॉ.बी.पी. जोहारपुरकर-भट्टारक संप्रदाय, ज्ञानपीठ, दिल्ली
41. सं. विनयसागर-खरतगच्छ का इतिहास, प्रथम खण्ड
42. डा. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर-जैन आयुर्वेद का इतिहास, उदयपुर

43. डा. जे.सी. जैन-प्राकृत जैन कथा साहित्य, एल.डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद

44. सं. नरोत्तमदास स्वामी आदि-ढोला मारु रा दूहा-काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

45. डा. मनमोहन स्वरूप माथुर-कुशललाभः व्यक्तित्व और कृतित्वः मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक

46. सं. देव कोठारी-केसरीमल सुराणा अभिनंदन ग्रंथ, राणावास-मारवाड़

47. तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान-जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1993

48. अगरचंद नाहटा-प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, भारतीय विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर

49. आचार्य शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

50. डा. मीतीलाल मेनारिया-राजस्थान का पिंगल साहित्य, उदयपुर

51. डा. हीरालाल माहेश्वरी-राजस्थानी भाषा और साहित्य, कलकत्ता

(ग) पत्रिकाएं—

1. मज्झमिका, 1972 (उदयपुर)
2. जन-साहित्य (चण्डीगढ़)
3. सप्तसिंधु (चण्डीगढ़)
4. अनेकान्त (दिल्ली), वर्ष 24, अक्टू. 1971, 1977
5. संबोधि (अहमदाबाद)
6. शोध पत्रिका (उदयपुर), वर्ष 14, अंक 1,3
7. विश्वम्भरा (बीकानेर), वर्ष 8, अंक 1
8. जैन, वर्ष 67, अंक 33-34
9. परम्परा, चौपासनी (जोधपुर)
10. राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग 5, अंक 9
11. जैन सत्य प्रकाश, अंक 10-11, वर्ष 11

♦ ♦ ♦